मार्च 2019

आई.एस.ओ. 9001: 2008 संगठन
मूल्य: ₹30

भाकृअनुप
ICAR

खेती

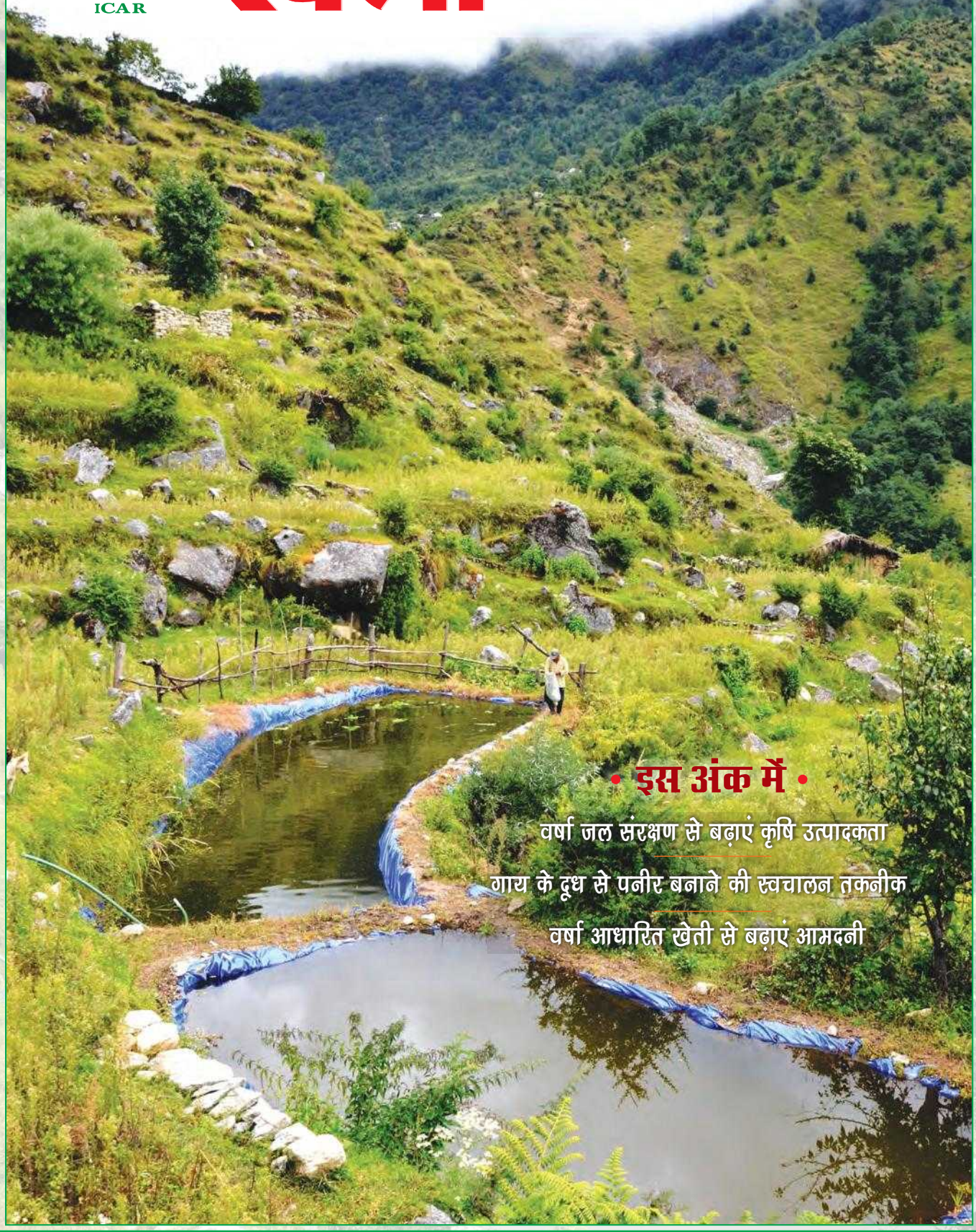

• इस अंक में •

वर्षा जल संरक्षण से बढ़ाएं कृषि उत्पादकता

गाय के दूध से पनीर बनाने की स्वचालन तकनीक

वर्षा आधारित खेती से बढ़ाएं आमदनी

www.icar.org.in

गुणकारी है ऊंटनी का दूध

वर्ष 1984 में स्थापित राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र पिछले डेढ़ दशक से ऊंटनी के दूध एवं इसकी उपयोगिता पर कार्य कर रहा है। राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र द्वारा किए गए गहन अनुसंधान कार्यों सहित अन्य एवं वैश्विक अनुसंधानों से प्राप्त निष्कर्षों में ऊंटनी का दूध कई रोगों के उपचार में लाभकारी पाया गया है।

ऊंटनी के दूध में पोषकीय गुण

- ऊंटनी का दूध अन्य दुधारू जानवरों के दूध की तरह रंग में सफेद एवं गंधरहित होता है। इसमें 8-11 प्रतिशत सकल ठोस पदार्थ, 1-2.5 प्रतिशत कुल प्रोटीन तथा वसा कम मात्रा (मात्र 1-3 प्रतिशत) में पाया जाता है।
- यह दूध लंबे समय तक (8-9 घंटे तक) खराब नहीं होता। साथ ही इसका स्व:जीवनकाल उष्ट्र लेक्टीपरऑक्सीडेज प्रणाली की सक्रियता द्वारा (37^0 सेल्सियस पर 18-20 घंटे तक) बढ़ाया जा सकता है।
- ऊंटनी के दूध में लोहा (0.32 मि.ग्रा./डे.ली.), जस्ता (1.2-6.3 मि.ग्रा./डे.ली.), तांबा (0.09-0.5 मि.ग्रा./डे.ली.) जैसे खनिज तथा विटामिन $बी_1$ (0.03 मि.ग्रा. प्रतिशत), $बी_2$ (0.04 मि.ग्रा. प्रतिशत), $बी_8$ (0.05 मि.ग्रा. प्रतिशत), $बी_{12}$ (0.0002 मि.ग्रा. प्रतिशत) एवं विटामिन-सी (40-50 मि.ग्रा./कि.ग्रा.) भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।
- इसके दूध में जरूरी वसीय अम्ल (लिनोलिक, एरेकिडिक इत्यादि) भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं।
- ऊंटनी के दूध में प्रचुर मात्रा में लाइसोजाइम, लैक्टो-फेरिन, इम्युनोग्लोब्युलिन, लैक्टोपरऑक्सीडेज एवं इस प्रकार के अन्य गुण वाले रक्षात्मक कारक होने से शरीर में रोग प्रतिरोधात्मक क्षमता का विकास होता है।

ऊंटनी के दूध का इस्तेमाल

- उष्ट्र दूध का कार्यात्मक खाद्य के रूप में रोजाना सेवन किया जाना चाहिए।
- किण्वित दूध को मट्ठे या छाछ के रूप में लिया जा सकता है, जिसका उपयोग 24 घंटे के भीतर हो।
- ऊंटनी के दूध से निर्मित दही, गाय या भैंस के दूध से निर्मित दही सदृश

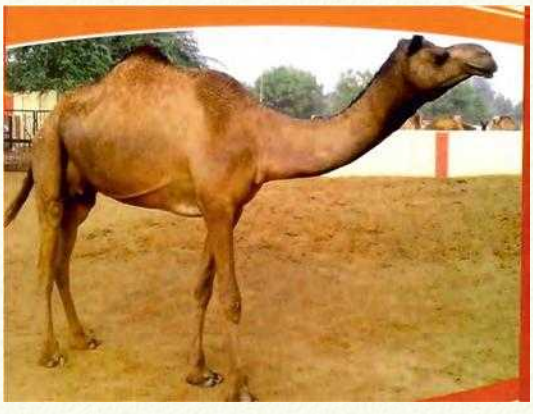

नहीं बनता परंतु यह पूरी तरह पीने योग्य होता है। बेहतर उपयोग हेतु ताजा किण्वित दूध को मथने के बाद लेना अधिक गुणकारी है।

- इस किण्वित दूध का उपयोग वयस्क व्यक्ति प्रतिदिन 200 मि.ली. कर सकते हैं तथा बच्चों में इसकी मात्रा उनकी उम्र एवं वजन के अनुसार तय करें।

उपयोग में बरतें निम्नलिखित सावधानियां

- दूध को खराब होने से बचाने के लिए इसे प्रशीतित (रेफ्रीजरेटेड) अवस्था में रखा जाए।
- पाश्चुरीकृत दूध उपयोग से पहले उबालना जरूरी नहीं है।
- दूध के पाश्चुरीकृत हेतु इसे 72^0 सेल्सियस पर 15 सेकंड तक गर्म किया जाए।

एसपी मेडिकल कॉलेज, एम्स, आईसीएमआर, जालमा और एनडीआरआई के साथ सहयोगिक अनुसंधान यह इंगित करते हैं कि यह कार्यात्मक खाद्य पदार्थ के रूप में उपयोगी है। ऊंटनी का दूध मधुमेह टाईप-1* के प्रबंधन/लाभ हेतु (अधिकांश उन मधुमेह रोगियों के लिए जिनमें वंशानुगत रूप से बीटा कोशिकाओं की कमी हो) उपयोग में लिया जा सकता है।

*मधुमेह (टाईप-1), मधुमेह रोग का वह प्रकार है जिसमें इंसुलिन उत्पन्न करने वाले पैनक्रियाज की बीटा कोशिकाओं का स्वप्रतिरक्षित विनाश हो जाता है।

इजराइल, संयुक्त अरब अमीरात, ब्रिटेन जैसे दुनिया भर के देशों में हुए अनुसंधान यह इंगित करते हैं कि ऊंटनी का दूध पीलिया, कालाजार, टीबी, हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, बच्चों में दूध की एलर्जी के उपचार इत्यादि में लाभदायक है। इस दूध से विभिन्न उत्पाद जैसे खीर, गुलाब जामुन, कुल्फी, चाय, कॉफी इत्यादि बनाए जा सकते हैं।

उपलब्धता : ऊंटनी का दूध बीकानेर (राजस्थान) के राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र में उपलब्ध।

स्वास्थ्य हेतु उपयोगी

- ऊंटनी के दूध में इन्सुलिन या इन्सुलिन जैसे विशेष कारक पाए जाने के कारण यह मधुमेह (टाइप-1) के उपचार में फायदेमंद है।
- यह दूधा क्षय रोग, हेपेटाइसिस-सी एवं सामान्य त्वचा रोगों से निजात दिलाने में सहायक है।
- ऊंटनी के दूध में बीटा-लैक्टॉग्लोब्युलिन प्रोटीन रहित एवं अल्फा-लैक्टॉग्लोब्युलिन प्रचुर मात्रा में होने से मनुष्य (विशेषकर बच्चों) में गाय के दूध की तरह यह एलर्जी उत्पन्न नहीं करता है।
- शोध आधारित परिणाम यह साबित करते हैं कि इसका दूध बच्चों में ऑटिज्म रोग के उपचार में उपयोगी है।
- यह आर्थराइटिस और कैंसर जैसे रोगों तथा हाइपरकॉलेस्ट्रिमिया में प्रभावी पाया गया है।
- किण्वित दूध के प्रोबायोटिक कारक अतिसार एलर्जी एवं श्वास संबंधी रोगों में गुणकारक है।

संपर्क

भाकृअनुप-राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र
पोस्ट बाक्स-07, जोड़बीड़,
बीकानेर-334001
(राजस्थान)

भाकृअनुप
ICAR

खेती

कृषि विज्ञान द्वारा ग्रामोत्थान
की मासिक पत्रिका

वर्ष 71, अंक: 11, मार्च 2019

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. अशोक कुमार सिंह** — **अध्यक्ष**
   उप-महानिदेशक (कृषि विस्तार)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
2. **डा. सतेन्द्र कुमार सिंह** — **सदस्य**
   परियोजना निदेशक
   कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
3. **डा. आर.सी. गौतम** — **सदस्य**
   पूर्व डीन
   भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
4. **डा. एस.के. सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग
   नियोजन ब्यूरो, नागपुर
5. **डा. वाई.पी.एस. डबास** — **सदस्य**
   निदेशक (प्रसार)
   जी.बी. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
   पंतनगर
6. **श्री सेठपाल सिंह** — **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
7. **श्री सुरेन्द्र प्रसाद सिंह** — **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **श्री अशोक सिंह** — **सदस्य सचिव**
   प्रभारी, हिन्दी संपादकीय एकक

संपादक
अशोक सिंह
संपादन सहयोग
सुनीता अरोड़ा

प्रधान प्रोडक्शन अधिकारी
डा. वीरेन्द्र कुमार भारती
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी
अशोक शास्त्री

लेआउट डिज़ाइन
डा. वीरेन्द्र कुमार भारती
अशोक शास्त्री

व्यवसाय सम्पर्क सूत्र
सुनील कुमार जोशी
व्यवसाय प्रबंधक
दूरभाष : 011-25843657
E-mail: bmicar@icar.org.in
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12
एक प्रति : रु. 30.00 वार्षिक : रु. 300.00

E-mail: khetidipa@gmail.com

विषय-सूची

संपादकीय **कृषि विविधीकरण एवं उत्पादकता बढ़ोतरी, अशोक सिंह**

आवरण कथा — 3
वर्षा जल संरक्षण से बढ़ाएं कृषि उत्पादकता
दीपक चौहान, मृगेन्द्र सिंह, पी.एन. त्रिपाठी और अल्पना शर्मा

प्रसंस्करण — 6
गाय के दूध से पनीर बनाने की स्वचालन तकनीक
चित्रनायक, एम. मंजुनाथ, महेश कुमार, प्रशांत मिंज, अमिता वी., खुशबू कुमारी, जितेन्द्र डबास और सुनील कुमार

आमदनी — 9
वर्षा आधारित खेती से अधिक आय
राज सिंह, विनोद कुमार सिंह और संजय सिंह राठौर

बचाव — 15
बदलती जलवायु के दुष्परिणामों को कम करने के उपाय
के.एन. तिवारी और योगेन्द्र कुमार

नई सोच — 20
फसल गहनता से अधिक कमाई
इन्दुबाला सेठी, रोहिताश्व सिंह, सुमित चतुर्वेदी, विजय कुमार सिंह और अजीत प्रताप सिंह

तिलहन — 22
सरसों व तोरिया से लें अधिक लाभ
ए.के. सिंह, जय सिंह, सिद्धार्थ नायक और डी.पी. शर्मा

खेती-बाड़ी — 27
धान-गेहूं फसल प्रणाली की समस्याएं एवं समाधान
गोपाल लाल चौधरी और कैलाश प्रजापत

पशु आहार — 33
पशु चारे के लिए नैपियर घास की खेती
गोविन्द कुमार वर्मा और वीरेंद्र कुमार प्रजापति

नियंत्रण — 35
जैवविविधता के लिए घातक है गाजर घास
कमलेश मीना, रजनीश श्रीवास्तव, अनुराधा रंजन कुमारी, रघुवीर मीना, मनोज पाण्डेय, शमशेर सिंह, रामप्रताप साहू, अभय सिंह और अजय तिवारी

कुछ नया — 38
प्लास्टिक बोतल में ढिंगरी मशरूम का उत्पादन
प्रवीण कुमार, आर.के. सिंह, हेम चन्द्र लाल और निधिका रानी

उपयोगिता — 41
फसलों का सच्चा मित्र है ट्राइकोडर्मा
आशीष कुमार त्रिपाठी और ए.के. सिंह

यांत्रिकी — 44
मशीनों से बीजों की सफाई
योगेश कुमार, किपु किरण सिंह महिलांग, सौमित्र तिवारी और यशवंत कुमार

प्रेरणा — 45
लघु एवं सीमांत किसानों को आत्मनिर्भर बनाने का एक सफल प्रयास
ब्रजमोहन, एन. रविशंकर, आजाद सिंह पंवार, चन्द्रेश कुमार चन्द्रेकर, पूनम कश्यप और धनन्जय त्रिपाठी

अंतरसस्यन — 48
शुष्क क्षेत्रों में उपयोगी है घास के साथ दलहन उगाना
सुशील कुमार, दीपेश माचीवाल और तेज राम बंजारा

कृषि कैलेण्डर — 51
मार्च के मुख्य कृषि कार्य
राजीव कुमार सिंह, विनोद कुमार सिंह, कपिला शेखावत, प्रवीण कुमार उपाध्याय और एस.एस. राठौर

पोषण
गुणकारी है ऊंटनी का दूध — आवरण II

प्राकृतिक धरोहर
संसाधन सम्पन्न सुंदरबन में वानस्पतिक सम्पदा — आवरण III

डिस्क्लेमर

लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं, उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। लेखों में संस्तुत रसायनों के डोज का प्रयोग करने से पहले विशेषज्ञों से सलाह अवश्य लें।

संपादकीय

कृषि विविधीकरण एवं उत्पादकता बढ़ोतरी

यह कहना कतई गलत नहीं होगा कि भारतीय कृषि आज के समय में एक निर्णायक दौर से गुजर रही है। कृषि और किसानों की दशा बदलने के प्रति तमाम सरकारी प्रयत्न, इसी को ध्यान में रखते हुए केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा उठाए जा रहे हैं। इसी क्रम में गंभीर चिन्तन का मुद्दा है कृषि विकास की दर में बढ़ोतरी तथा कृषक आय में वृद्धि पर जोर। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए पंचवर्षीय योजनाओं के अतिरिक्त वार्षिक बजट में भी नए-नए प्रावधान किए जाते रहे हैं। इनमें विभिन्न प्रकार की कृषि योजनाओं, रियायती कृषि ऋण, इलैक्ट्रानिक-राष्ट्रीय कृषि मार्केटिंग (ई-नैम) आदि का विशेषतौर पर नाम लिया जा सकता है।

कृषि उत्पादकता एवं उत्पादन बढ़ाने हेतु हरसंभव प्रयास भी इसी रणनीति की महत्वपूर्ण कड़ी है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अंतर्गत कार्यरत संस्थानों के वैज्ञानिकों द्वारा इस विषय पर निरंतर शोध कार्य किए जा रहे हैं। इन्ही अनुसंधान कार्यों का नतीजा है कि देश के अलग-अलग जलवायु क्षेत्रों के अनुकूल कृषि प्रणालियों का विकास बड़े पैमाने पर संभव हो सका है। इनमें गहन कृषि, फसल विविधीकरण, समेकित कृषि, व्यावसायिक खेती आदि का विशेषतौर पर उल्लेख किया जा सकता है। बड़े पैमाने पर कृषकों द्वारा इन्हें अपने खेतों में अब अपनाया भी जा रहा है। कृषक समुदाय के बीच इन सभी उन्नत तकनीकों के प्रति जागरूकता फैलाने का काम भी इस दौरान कृषि विस्तार कर्मियों द्वारा किया जा रहा है। इसका सुपरिणाम साल दर साल बढ़ते रिकॉर्ड कृषि उत्पादन के रूप में सामने आ रहा है।

सीमांत और छोटे किसानों तक इन तकनीकों का लाभ अभी पूरी तरह से नहीं पहुंच सका है। इसलिए इस दिशा में अधिक काम किये जाने की आवश्यकता है। कम लागत वाली आधुनिक कृषि प्रणालियों के उपयोग से एक ही समय में कई प्रकार के कार्य (फसलोत्पादन, सब्जी उत्पादन, पशुपालन, मत्स्य पालन, मधुमक्खी पालन) करते हुए वर्षभर कमाई संभव है। इन कृषि पद्धतियों के प्रदर्शन देशव्यापी स्तर पर किसानों के खेतों में संबंधित एजेंसियों के माध्यम से किए जा रहे हैं।

सरकार द्वारा भी किसानों की समृद्धि के लिए कई अभिनव और व्यावहारिक कदम हाल के वर्षों में उठाए गए हैं। इनमें प्रति बूंद अधिक उपज, प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, न्यूनतम समर्थन मूल्य के दायरे में अधिक फसलों को शामिल करने जैसे उदाहरण शामिल हैं। इसी क्रम में 'प्रधानमंत्री किसान सम्मान' योजना के अंतर्गत लगभग 12 करोड़ कृषक परिवारों को 6000 रुपये वार्षिक प्रत्यक्ष सहायता देने का भी जिक्र किया जा सकता है।

इस वास्तविकता को नकारा नहीं जा सकता है कि हमारे देश में अधिकांश फसलों के मामले में उत्पादकता वैश्विक औसत उत्पादकता से कम है। इस पर काफी ध्यान देने की जरूरत है ताकि कम जोत से भी कृषकों को उत्पादकता बढ़ने से लाभ मिल सके। इसके लिए उन्नत, संकर किस्मों के साथ ही भूमि की उर्वरता बढ़ाने की जरूरत है। मृदा में कम हो रहे पोषक तत्वों की सही समय पर आपूर्ति करते हुए जलवायु परिवर्तन के अनुकूल फसलों/किस्मों का उपयोग बढ़ाने से ही उत्पादकता में आशातीत वृद्धि संभव है।

कृषक समुदाय को भी परंपरागत कृषि की सोच से बाहर निकलते हुए नवोन्मेषी तकनीकों को अपनाने पर अधिक बल देना होगा। इसके लिए आय के साथ उत्पादकता में बढ़ोतरी के लिए वैज्ञानिक तौर-तरीकों के बारे में जानकारियां हासिल कर इनका प्रशिक्षण भी हासिल करें तो काफी हद तक सफलता प्राप्त की जा सकती है।

(अशोक सिंह)

वर्षा जल संरक्षण से बढ़ाएं कृषि उत्पादकता

दीपक चौहान[1], **मृगेन्द्र सिंह**[2], **पी.एन. त्रिपाठी**[1] और **अल्पना शर्मा**[1]
कृषि विज्ञान केन्द्र, शहडोल, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)

" देश में एक तरफ जहां कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए अधिक जल की जरूरत है, वहीं दूसरी तरफ हर वर्ष बड़ी मात्रा में वर्षा जल बहकर व्यर्थ चला जाता है। ऐसे में यह समय की मांग है कि उपयुक्त जल संरक्षण एवं प्रबंधन तकनीकों के माध्यम से बरसात के पानी का संचयन किया जाए। यह जल सिंचाई की लागत कम करने और फसल का उत्पादन बढ़ाने में मददगार साबित होगा। "

उपयुक्त जल संरक्षण एवं उसका उपयोग मूल रूप से तीन तरीकों से किया जा सकता है :

- वर्षा जल प्रबंधन
- नहर जल प्रबंधन
- भूजल प्रबंधन

वर्षा जल प्रबंधन

भारत में प्रकृति की देन से प्रचुर मात्रा में वर्षा होती है, परंतु देश में स्थानिक वर्षा की मात्रा एवं वितरण अस्थाई रूप से अत्यधिक परिवर्तनशील है। कम अवधि के साथ उच्च तीव्रता की वर्षा की वजह से वर्षा जल जमीन की सतह पर गिरने के बाद बह कर व्यर्थ हो जाता है। इसलिए वर्षा के पानी को वहीं संचय करना बहुत जरूरी है। सामान्यत: वर्षा जल का संचयन दो तरीकों से किया जा सकता है जैसे; इन-सीटू एवं एक्स-सीटू।

[1]वैज्ञानिक, वरिष्ठ वैज्ञानिक; [2]प्रमुख

इन-सीटू वर्षा जल संरक्षण

इन-सीटू तकनीक एक तरीके से मृदा प्रबंधन का उपाय है, जो वर्षा जल के अंत:रिसाव (इंफिल्ट्रेशन) को बढ़ाती है एवं सतही अपवाह करती है। इन-सीटू जल संरक्षण के तरीकों का प्राथमिक उद्देश्य खेती योग्य क्षेत्र में सिंचित वर्षा जल के अंत: रिसाव में सुधार के द्वारा मृदा की परतों में पानी के भंडारण को बढ़ावा देना है। आमतौर पर इन-सीटू वर्षा जल संरक्षण के लिए कुछ पद्धतियों का इस्तेमाल किया जाता है।

एक्स सीटू वर्षा जल संरक्षण

एक्स सीटू वर्षा जल संरक्षण में वर्षा जल के अपवाह को फसल क्षेत्र के बाहर एकत्रित किया जाता है। इसके लिए कई तरह की यांत्रिक संरचनाओं जैसे खेत तालाब और चेक डैम (लघु बांध) आदि की जरूरत पड़ती है।

चौड़ी क्यारी एवं कूंड़ पद्धति

इस पद्धति में लगभग 100 सें.मी. चौड़ी क्यारियां, 50 सें.मी. गहरे कूंड़ों के साथ बनाई जाती हैं। इन क्यारियों की चौड़ाई को खेती के लिए स्थान की स्थिति, फसल की ज्यामिति एवं प्रबंधन के तरीकों के आधार पर परिवर्तित किया जा सकता है। यह तकनीक उन क्षेत्रों में जहां काली मृदा पाई जाती है और वर्षा 750 मि.मी. या इससे अधिक होती है, के लिए उपयुक्त होती है।

मेड़ एवं कूंड़ पद्धति

इस विधि का सिद्धांत खेत में मेड़ एवं कूंड़ के माध्यम से वर्षा जल संग्रहण में सुधार के द्वारा मृदा की ऊपरी सतह में पानी की मात्रा को बढ़ाने पर आधारित है। यदि ढाल के सहारे मेड़ एवं कूंड़ बनाए जाते हैं तो इस पद्धति को कंटूर मेड़ एवं कूंड़ पद्धति भी कहा जाता है। यह सामान्य तौर पर 5 प्रतिशत की ढलान एवं जहां 350-750 मि.मी. वर्षा होती

है। यह उस क्षेत्र में बनाया जाता है। इसमें कूंड़ के दोनों किनारों पर फसलों को लगाया जा सकता है।

कंटूर ट्रेन्चिंग

इस तकनीक में खाइयों को कृत्रिम रूप से फसल क्षेत्र में कंटूर पंक्तियों के साथ तैयार किया जाता है। यदि वर्षा जल पहाड़ी के नीचे की ओर बहता है तो नीचे इन खाइयों को बनाने से वर्षा का पानी इन खाइयों में एकत्रित किया जा सकता है, जो कि मृदा की उपसतह परत में फसल विकास एवं उपज में वृद्धि करने के लिए पौधों की जड़ों तक चला जाता है।

सीढ़ीदार खेत एवं कंटूर बंडिंग

सीढ़ीदार खेत एवं कंटूर बंडिंग के लिए पहाड़ी के ढलान को कई छोटे-छोटे

सारणी: बूंद-बूंद सिंचाई पद्धति से जल बचत एवं उपज में वृद्धि

फसल	जल बचत (प्रतिशत)	वृद्धि (प्रतिशत)
गन्ना	50	30
कपास	55	30
भिंडी	40	15
बैंगन	55	20
तोरई	60	20
पत्ता गोभी	60	25
अंगूर	50	90
मूंगफली	40	70
नीबू	80	35
पपीता	60	75
मूली	73	15
मिर्च	60	45

जल संरक्षण से लें भरपूर फसल

ढलानों में बांटा जाता है। पानी के प्रवाह को रोककर मृदा में पानी के अवशोषण को बढ़ावा दिया जाता है। साथ ही मृदा के कटाव को भी बचाया जाता है। यह संरचना 8 प्रतिशत से कम ढलान पर प्रभावी साबित होती है। 8 प्रतिशत से ज्यादा ढलान में यह संरचना महंगी एवं कम प्रभावी सिद्ध होती है।

कंटूर खेती

इस विधि से एक ही ढलान में खेती की गतिविधियां (जुताई, रोपाई और फसल कटाई आदि) की जाती हैं। इसमें ऊपर व नीचे की ढलान की आवश्यकता नहीं होती है। कंटूर खेती वर्षा जल के अपवाह को रोकने के लिए एक छोटी बाधा के रूप में कार्य करती है। इससे पानी को जमीन के अंदर जाने का ज्यादा समय मिल जाता है। कंटूर खेती 2 से 7 प्रतिशत तक की मध्यम ढलान वाले क्षेत्रों के लिए कारगर साबित होती है।

सूक्ष्म जलग्रहण

इस तकनीक के तहत बारानी क्षेत्रों से वर्षा जल के अपवाह को फसली क्षेत्र में संग्रहित किया जाता है। इससे संग्रहित क्षेत्र की मृदा में पानी के भंडारण में सुधार हो सकता है। सूक्ष्म जलग्रहण को मुख्य रूप से पेड़ या झाड़ियों को उगाने के काम में लिया जाता है। यह तकनीक प्रतिवर्ष 150 मि.मी. से कम वर्षा वाले क्षेत्रों तथा शुष्क व अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए सबसे उपयुक्त है।

खेत तालाब

खेत तालाब, तटबंध प्रकार का या खोदा हुआ हो सकता है। यह तालाब उन स्थानों पर बनाया जाता है, जहां पानी की निकासी वाली नालियों में गड्ढे हों। इस प्रकार के तालाब में गड्ढों से मृदा के अवसाद को हटा दिया जाता है। उसमें वर्षा के पानी को एकत्रित करने के लिए एक तटबंध का निर्माण किया जाता है। खुदे हुए तालाब का निर्माण खेत में उस जगह किया जाता है जहां तालाब के क्षेत्रफल में वर्षा जल का अधिकतम अपवाह एकत्रित हो सके। ऐसे तालाब में जल प्रवेश व निकास संरचनाओं के साथ चारों ओर तटबंध का निर्माण किया जाता है।

चेक डैम (लघु बांध)

इस प्रकार की संरचनाओं का निर्माण जल संभरण क्षेत्र में जल निकासी वाली नालियों में किया जाता है। इसके लिए स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामग्री (ईंट, पत्थर, रेत, सीमेंट आदि) का उपयोग किया जाता है।

नहरी क्षेत्र में जल संरक्षण

नहरी सिंचाई, भारत में कुल सिंचित क्षेत्र के 29 प्रतिशत में योगदान के साथ दूसरा सबसे महत्वपूर्ण सिंचाई स्रोत है। कुछ नहरें वर्ष भर सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध करवाती हैं। फसलों को सिंचाई के लिए पानी की जब भी आवश्यकता होती है, उस समय पानी की उपयुक्त मात्रा को उपलब्ध करवाया जा सके ताकि सूखे की स्थिति

भूजल प्रबंधन

भूजल हमारे देश में सिंचाई तथा घरेलू एवं औद्योगिक क्षेत्रों की पानी की जरूरतों को पूरा करने के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण संसाधन है। दक्ष जल प्रबंधन के साथ-साथ समुचित भूजल विकास से न केवल जल संरक्षण में मदद मिलेगी बल्कि कृषि में स्थिरता भी प्राप्त होगी। यदि किसी बेसिन से उचित जल प्रबंधन की योजना के बिना भूजल का लगातार दोहन किया जाएगा तो भूजल में गिरावट होगी। किसी भी कमांड में जल की प्राकृतिक आपूर्ति बढ़ाने के लिए भूजल पुनर्भरण की अत्यंत आवश्यकता है। यह पुनर्भरण प्राकृतिक या कृत्रिम हो सकता है। भूजल जलाशय की प्राकृतिक पुनर्भरण एक बहुत धीमी प्रक्रिया है, जो कि अक्सर विभिन्न भागों में भूजल संसाधनों के अत्यधिक एवं निरंतर दोहन के साथ तालमेल बनाए रखने में असमर्थ है। इसलिए इस तरह के क्षेत्रों में भूजल स्तर एवं भूजल संसाधनों में गिरावट आ रही है। प्राकृतिक पुनर्भरण के अलावा कृत्रिम को भी बेहतर भूजल संसाधन विकास के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। कृत्रिम पुनर्भरण का मुख्य लक्ष्य कुछ संरचनाओं का निर्माण करके या कृत्रिम रूप से प्राकृतिक परिस्थितियों को बदलकर भूमिगत जल भंडारण की प्राकृतिक आपूर्ति को बढ़ाना है। इसके लिए कई विधियां विकसित की गई हैं जैसे गड्ढों, कुओं एवं सतही जल निकायों से पुनर्भरण के लिए पम्पिंग आदि।

जल प्रबंधन की महत्ता

भारत में विश्व की 16 प्रतिशत आबादी रहती है, जबकि हमारे पास विश्व की 2 प्रतिशत भूमि तथा 4 प्रतिशत ही पानी के स्रोत हैं। देश में 83 प्रतिशत पानी का प्रयोग कृषि के लिए होता है। आज के इस दौर में उपयुक्त जल संरक्षण एवं प्रबंधन के माध्यम से अधिक फसल उत्पादन की आवश्यकता है। फसलों की सिंचाई के लिए सही जल क्षमता का अभिप्राय है-वाष्पीकरण या फिर जल निकासी से होने वाले नुकसानों का कम से कम प्रभाव होना। ड्रिप सिंचाई महंगा साधन होने के कारण वर्षा जल संरक्षण इस दिशा में एक सर्वोत्तम प्रयास है।

से फसलों को बचाया जा सके और साथ ही कृषि उत्पादन को बढ़ाने में मदद मिले। नहर के कमांड में कम पानी की मात्रा एवं फसल के लिए अविश्वसनीय पानी की अनुपलब्धता के कारण फसल उत्पादकता संभावित उत्पादकता की तुलना में कम है। इस स्थिति में वर्षा जल संरक्षण एवं सुरक्षित सीमा तक भूजल दोहन का सुझाव दिया

सीढ़ीदार खेत

जाता है। नहर के पानी को संचित रखने के लिए सहायक जल संरचनाओं का निर्माण किया जाता है।

जल विस्तार

यह विधि कृत्रिम रूप से भूजल पुन: भरण के लिए व्यापक रूप से उपयोग में लाई जा रही है। इस विधि में जमीन की सतह पर पानी को भरा जाता है, जिससे पानी अंत: रिसाव के द्वारा जमीन में जाकर भूजल स्तर में मिल जाता है।

टपकन तालाब

यह एक कृत्रिम रूप से बनाया गया सतही जल निकाय है, जो अत्यधिक पारगम्य भूमि में सतही अपवाह को टपकन द्वारा भूजल का पुनर्भरण कर सकता है।

इंजेक्शन कुएं/पुन: भरण कुएं

इन कुओं को अधिक गहराई तक जलवाही स्तर को पुनर्भरण करने के लिए उपयोग में लिया जाता है। ऐसे कुओं में पानी का प्रवाह पंप वाले कुओं के विपरीत होता है। इंजेक्शन कुओं को स्थापित करना एवं संचालित करना अपेक्षाकृत महंगा होता है।

जल संरक्षण के दक्ष उपयोग

कृषि में पैदावार एवं जल उत्पादकता बढ़ाने के लिए जल संसाधन विकास के साथ-साथ विवेकपूर्ण तरीके से दक्ष जल के उपयोग की आवश्यकता है। निम्न उपायों द्वारा बेहतर सिंचाई क्षमता एवं उच्च जल उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है:

उचित सिंचाई के समय का निर्धारण

सिंचाई के समय का निर्धारण एक जल प्रबंधन उपाय है, जो सिंचित फसल के लिए सीमित पानी के प्रयोग के बारे में

प्लास्टिक पलवार से मृदा में नमी संरक्षण

बताता है। समुचित सिंचाई के समय निर्धारण में विधि, समय एवं सिंचाई के लिए पानी की मात्रा आदि पर निर्भर करती है। ये सभी सामान्य रूप से फसल समय, मृदा प्रकार तथा जलवायु पर निर्भर करता है। पानी की कमी वाले क्षेत्र में आंशिक जड़ क्षेत्र में नमी बनाकर जल की उत्पादकता में सुधार किया जा सकता है।

भूमि समतलीकरण

यह विधि भूमि ढलान को कम करके सिंचाई की एकरूपता को बढ़ाती है। सामान्यत : हल्के या मध्यम भूमि ढलान को समतल करके फसल क्षेत्र में सतह सिंचाई विधियों की दक्षता में सुधार लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। लेजर लैंड लेवलर का उपयोग भूमि को समतल करने के लिए किया जाता है।

पलवार एवं अवशेष प्रबंधन

खेत में पलवार एवं अवशेष प्रबंधन वाष्पीकरण को कम करके मृदा में नमी का संरक्षण करती है। पलवार के लिए प्लास्टिक पलवार, जैविक पलवार (घास, फसल अवशेष आदि) का प्रयोग करते हैं। जैविक पलवार मृदा में नमी संरक्षण के साथ-साथ मृदा की उर्वरकता को भी बढ़ाती है।

सिंचाई प्रणाली में सुधार

सतही सिंचाई पद्धति के तहत खेत में सिंचाई प्रणाली में सुधार करने की आवश्यकता अति महत्वपूर्ण है। दक्ष सिंचाई के लिए नाली एवं पाइप लाइन की आवश्यकता होती है। नाली के लिए ईंट एवं सीमेंट का उपयोग किया जा सकता है। उचित सिंचाई प्रणाली से सीपेज एवं पानी के टपकन वाले नुकसान को 30 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है। ■

ड्रिप एवं फव्वारा सिंचाई पद्धति

ड्रिप सिंचाई के तहत पानी को पाइप के माध्यम से सीधे पौधों की जड़ क्षेत्र में सतह या उपसतह पर ड्रिपर्स के माध्यम से पहुंचाया जाता है। इस विधि से उर्वरकों का सिंचाई के साथ प्रयोग करना भी संभव है। इस सिंचाई पद्धति के निम्न गुण हैं :

- पानी एवं पोषक तत्वों की बचत
- श्रम लागत की बचत
- भूमि को समतल करने की आवश्यकता नहीं
- खरपतवार की समस्या में कमी
- फसल के आर्थिक लाभ में वृद्धि आदि।

फव्वारा सिंचाई पद्धति, कम दूरी की फसलों को उगाने के लिए उपयुक्त है जैसे गेहूं, तिलहन एवं दलहन आदि। इसके संचालन के लिए उच्च दबाव आवश्यक है। इस प्रणाली के तहत पानी की बचत सतही सिंचाई की तुलना में 40 प्रतिशत तथा उपज में 50 प्रतिशत तक वृद्धि होती है।

गाय के दूध से पनीर बनाने की स्वचालन तकनीक

चित्रनायक*, एम. मंजुनाथ, महेश कुमार, प्रशांत मिंज, अमिता वी., खुशबू कुमारी, जितेन्द्र डबास और **सुनील कुमार**

“आजकल मौसम की अनियमितताओं को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि हर किसान खेती के साथ ही छोटा, मध्यम या बड़ा कोई न कोई अतिरिक्त आय का स्रोत भी विकसित करे। देश की जलवायु को देखते हुए डेरी उद्यम को किसानों के लिए बेहतर विकल्प कहा जा सकता है। गाय के दूध से निर्मित पनीर भारत ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में एक बहुत ही लोकप्रिय दुग्ध उत्पाद होने के साथ दैनिक आहार में उच्च गुणवत्ता वाले वसा, प्रोटीन, विटामिन, मिनरल, कैल्शियम और फॉस्फोरस आदि का उत्तम स्रोत भी है। ऐसे में गाय के दूध से पनीर बनाने वाली मशीन की सहायता से किसान कम लागत और कम समय में अच्छी गुणवत्ता का पनीर बनाकर अपनी आय में अच्छी वृद्धि कर सकते हैं।”

पनीर बनाने के लिए गाय अथवा भैंस या मिश्रित दुग्ध से छेना पृथक कर, छेना के पानी को छानकर अलग करने के पश्चात थक्के के रूप में प्राप्त किया जाता है। पनीर, भारत में सबसे लोकप्रिय पारंपरिक दुग्ध उत्पादों में से एक है। इसका उपयोग विभिन्न प्रकार की सब्जियों जैसे-पालक पनीर, मटर पनीर, शाही पनीर एवं स्नैक्स जैसे-पनीर टिक्का और पनीर मसाला आदि के रूप में बहुतायत में होता है।

आजकल मौसम की अनियमितताओं को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि हर कृषक कोई न कोई आय का अतिरिक्त स्रोत भी खेती के साथ-साथ अवश्य विकसित करे। डेरी का विकल्प देश के पर्यावरण के आधार पर सर्वोत्तम है। गाय के दूध के साथ-साथ पनीर, खोया आदि से भी किसानों की आय में अच्छी वृद्धि संभव है। गाय के दूध से निर्मित पनीर भारत ही नहीं पूरे विश्व में एक बहुत ही लोकप्रिय दुग्ध उत्पाद होने के साथ-साथ हमारे दैनिक आहार में उच्च गुणवत्ता वाले वसा, प्रोटीन, विटामिन, मिनरल, कैल्शियम व फॉस्फोरस आदि का उत्तम स्रोत भी है।

पनीर बनाने के लिए गाय अथवा भैंस के दूध को 95^0 सेल्सियस तापमान तक गर्म करके ऊष्मा-अम्लीय विधि द्वारा छेना पृथक कर उसे जमने के लिए 2-3 मिनट छोड़ दिया जाता है। छेना के पानी को छानकर थक्के के रूप में पृथक कर छेना को श्वेत कपड़े में रखा जाता है। इस प्रकार प्राप्त छेने को श्वेत पतले कपड़े में लपेट कर छिद्र वाले हूप में रखकर 10 से 15 मिनट तक दबाया जाता है। इस दौरान तापमान 65^0 सेल्सियस से अधिक होना चाहिए तभी अच्छी गुणवत्ता का पनीर बनता है। इस काम के लिए छेने को स्वचालन तकनीक द्वारा प्रेस करके पनीर बनाने की मशीन का विकास किया गया। इस मशीन का उपयोग कर पनीर के कई नमूने प्राप्त किए गए व उनका गुणवत्ता मूल्यांकन किया गया। इस मशीन से बनाये गए पनीर और मार्केट से प्राप्त किए गए देश के उत्तम ब्रांड के पनीर लिए गए। इन दोनों पनीर के नमूनों के गुणों की जांच की गई। विस्तार से जांच करने व इनके परिणामों की तुलना करने पर दोनों की गुणवत्ता में कोई खास फर्क नहीं पाया गया।

पनीर प्रेसिंग स्वचालित मशीन क) एफआरएल यूनिट व सोलेनोइड वाल्व
ख) पीआईडी कंट्रोलर, टाइमर फ्रंट पैनल व पनीर प्रेस

दुग्ध उत्पादों व पनीर से संबंधित अध्ययनों में यह पाया गया है कि विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ-खासकर दुग्ध व दुग्ध के विभिन्न उत्पादों की गुणवत्ता बरकरार रखने के लिए उनमें होने वाली रासायनिक प्रतिक्रियाएं, उनके माइक्रोबियल काउन्ट-मान तथा उनके रखरखाव व सफाई आदि का काफी ध्यान रखना पड़ता है। खाद्य पदार्थों को खुले में रखने व बार-बार छूने से उनमें रासायनिक प्रतिक्रिया की दर व माइक्रोबियल संक्रमण की आशंका बढ़ जाती है। अत: बाह्य

*वरिष्ठ वैज्ञानिक, डेरी अभियांत्रिकी विभाग, भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान (समतुल्य विश्वविद्यालय), करनाल-132001 (हरियाणा)

संक्रमण व बार-बार छूने की प्रक्रिया को नियंत्रित करने के लिए स्वचालन (ऑटोमेशन) तकनीक अपनाई जाती है। ऑटोमेशन तकनीक में मानवीय दखल कम होता है। मशीन निर्धारित ढंग से सुरक्षित वातावरण में बिना किसी बाह्य वातावरण के हस्तक्षेप के अपना कार्य सम्पादित करती है। इसके फलस्वरूप खाद्य पदार्थों की शेल्फ लाइफ में वृद्धि होती है। इन्हें अधिक समय तक उत्तम गुणवत्ता के साथ संरक्षित व सुरक्षित रखा जा सकता है।

गाय या भैंस के दूध से पनीर बनाने के लिए उपयोग में लाये गए दूध के प्रकार, उनमें उपस्थित प्रतिशत नमी, जल, वसा, प्रोटीन और लैक्टोज आदि की मात्रा पर ही पनीर का रासायनिक संयोजन व उसकी गुणवत्ता निर्भर करती है। गाय व भैंस के दूध में उपस्थित वसा की मात्रा से पनीर में भी वसा की मात्रा काफी हद तक प्रभावित होती है। विभिन्न प्रकार के शोधों से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर पनीर के भिन्न-भिन्न रासायनिक संयोजनों का विवरण सारणी-2 में दिया गया है।

इस विधि द्वारा प्राप्त मानों में निर्धारण करने वाले निपुणता की वर्तमान स्थिति के अनुसार बदलाव व विविधता भी पाई जाती है। इस कमी को दूर करने के लिए दूसरी विधि का प्रयोग किया जाता है, जिसमें विभिन्न प्रकार के यंत्रों व ऑटोमेटिक उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। ये स्वचालित (ऑटोमेटिक) उपकरण खाद्य पदार्थों में होने वाले हर प्रकार के परिवर्तनों का सटीक मूल्यांकन करके उनका सही परिणाम देते हैं। इस प्रकार प्राप्त परिणामों में विविधता नहीं होती है। इन उपकरणों द्वारा प्राप्त मानों को कम्प्यूटर में सुरक्षित रखकर व अन्य उपयोग के लिए आगे भी लाया जाता है। उपकरणों द्वारा स्क्रीन पर दिखाए गए मानों के द्वारा खाद्य पदार्थों में होने वाले

खाद्य-पदार्थों का प्रसंस्करण व उनकी गुणवत्ता

उपभोक्ताओं के साथ-साथ फूड प्रोसेसिंग इंडस्ट्री के लिए भी खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता और उनका रखरखाव आदि काफी महत्वपूर्ण है। प्रत्येक उपभोक्ता पौष्टिक, स्वच्छ, उत्तम गुणवत्ता व स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से पूरी तरह सुरक्षित खाद्य पदार्थ ही बाजार से खरीदना चाहता है। इसी प्रकार खाद्य पदार्थ से जुड़ी इंडस्ट्री व कम्पनी भी ऐसे ही अच्छे, पौष्टिक व उत्तम गुणवत्ता वाले उत्पाद बाजार में लाकर अपनी साख बनाना चाहती हैं।

भारतीय जलवायु में पनीर व अन्य दुग्ध उत्पादों की शेल्फ लाइफ

भारतीय जलवायु में ऐसा पाया गया है कि गाय, भैंस अथवा मिश्रित दूध व दूध से बने खाद्य उत्पादों की शेल्फ लाइफ सामान्यत: कम होती है। सामान्य तापमान पर वे जल्दी खराब होने लगते हैं। इनमें माइक्रोबियल काउंट मान को नियंत्रित करने के लिए इन्हें फ्रिज या रेफ्रिजरेटर में रखा जाता है, ताकि माइक्रोबियल गुणन की गति कम हो। गाय के दूध में प्रति मि.ली. माइक्रोबियल काउन्ट 10^5 से अधिक नहीं होना चाहिए। गाय, भैंस अथवा मिश्रित दूध में माइक्रोबियल काउन्ट 10^5 प्रति मि.ली. से कम होने पर ही इस दूध को उत्तम गुणवत्ता की श्रेणी में रखा जाता है व इसे अंतर्राष्ट्रीय बाजार में स्वीकार किया जाता है। दुग्ध उत्पादों में पनीर का उपयोग भारत सहित अन्य देशों में बड़ी मात्रा में होता है। सामान्य तापमान पर पनीर लगभग एक दिन (24 घंटे) तक ही सुरक्षित रह सकता है, जबकि प्रशीतित तापमान पर पनीर को लगभग सात दिनों तक उत्तम गुणवत्ता की अवस्था में सुरक्षित रखा जा सकता है। दुग्ध उत्पादों के साथ-साथ खाद्य पदार्थों की शेल्फ लाइफ के दौरान मुख्यत: उनमें तीन प्रकार के परिवर्तन होते हैं। ये तीन मुख्य परिवर्तन हैं-भौतिक, रासायनिक व माइक्रोबियल काउन्ट मान में परिवर्तन। इन परिवर्तनों में से मुख्यत: रासायनिक व माइक्रोबियल काउन्ट मान में परिवर्तन द्वारा खाद्य-पदार्थों व दूध और दुग्ध उत्पादों की शेल्फ लाइफ प्रभावित होती है। इनके रंगों में भी इनकी गुणवत्ता के कारण परिवर्तन होता है, साथ ही साथ खराब होने के बाद ये अपना प्राकृतिक स्वाद खो देते हैं अथवा इसमें से गंध आने लगती है।

गाय के दूध को गर्म कर उसमें सिट्रिक अम्ल का घोल डाल कर पनीर बनाना

सारणी 1. पनीर का रासायनिक संयोजन

पनीर बनाने हेतु दूध का प्रकार	जल/नमी (प्रतिशत)	वसा (प्रतिशत)	प्रोटीन (प्रतिशत)	लैक्टोज (प्रतिशत)	भस्म (प्रतिशत)
भैंस का दूध (5 प्रतिशत वसा)	52.75	25.64	15.62	2.68	2.14
भैंस का दूध (6 प्रतिशत वसा)	50.98	27.97	14.89	2.63	2.08
गाय का दूध (3.5 प्रतिशत वसा)	55.97	18.98	20.93	2.01	1.45
गाय का दूध (5 प्रतिशत वसा)	53.90	24.80	17.60	--	--

सारणी 2. पनीर का टेक्स्चर एनालाईजर द्वारा प्राप्त भौतिकी रासायनिक मान

पनीर नमूनों का गुणवत्ता मान	2.5 कि.ग्रा./ सें.मी^{2} दाब		3.0 कि.ग्रा./ सें.मी^{2} दाब		3.5 कि.ग्रा./ सें.मी^{2} दाब	
	10 मिनट	15 मिनट	10 मिनट	15 मिनट	10 मिनट	15 मिनट
नमी की मात्रा (प्रतिशत)	58.55	57.55	55.45	53.55	52.25	50.55
हार्डनेस मान (न्यूटन)	22.50	27.55	33.75	36.55	38.65	42.10

रासायनिक, भौतिक व माइक्रोबियल काउन्ट मान में परिवर्तन का सही-सही मूल्यांकन संभव हो पाता है। ये आंकड़े ग्रॉफ व टेबल आदि के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं।

स्वचालन विधि द्वारा पनीर बनाने की प्रक्रिया

भारतीय खानपान व खासकर शाकाहारी लोगों के लिए गाय या भैंस के दुग्ध से बना पनीर ऐसा उपयोगी उत्पाद है, जो मुख्य आहार का अंग होने के साथ-साथ होटलों, घरों, शादी-ब्याह या पार्टी में बहुतायत में उपयोग में लाया जाता है। पालक पनीर, मटर पनीर और पनीर-टिक्का, पनीर के पकौड़े आदि होटलों, पार्टियों और घरों आदि में बड़े ही चाव के साथ खाए जाते हैं। पनीर में उपस्थित पौष्टिक तत्वों के कारण ये स्वास्थ्य के लिए भी बहुत ही फायदेमंद आहार है। पनीर बनाने के लिए दूध को लगभग 90^0 से 95^0 सेल्सियस तक गर्म कर उसमें 2 से 3 प्रतिशत की मात्रा का सिट्रिक अम्ल का घोल, 70^0-75^0 सेल्सियस गर्म जल में बनाकर डाला जाता है। सिट्रिक अम्ल के घोल डालने पर दूध फटने लगता है व गरम छेना पृथक होने लगता है। पांच-सात मिनट तक छेना के नीचे बैठने व पृथक होने के बाद इसे श्वेत पतले कपड़े से छानकर अलग कर प्रेसिंग मशीन के हूप में रखा जाता है।

ध्यान रखें कि प्रसंस्करण से पूर्व छेना का तापमान 65^0-70^0 सेल्सियस से कम न हो। छिद्रित पनीर हूप में रखने के बाद डिजिटल टाइमर में समय का रेफरेन्स मान नियत कर कंप्रेसर ऑन किया जाता है। एफआरएल यूनिट व सोलेनोइड वाल्व से होकर कंप्रेस्ड हवा न्यूमैटिक सिलेंडर को ऑपरेट करती है व छिद्रित पनीर हूप के ऊपर दाब पड़ने लगता है। दाब का मान भी एफआरएल यूनिट द्वारा स्वचालन विधि से नियत कर छेना के ऊपर लगाया जाता है। इस प्रकार छेना के ऊपर लगने वाला दाब व समय दोनों को स्वचालन विधि द्वारा नियत किया व पनीर के ऊपर लगाया जाता है। नियत समय के सोलोनोइड वाल्व का ऊपरी वाल्व बंद हो जाता है व नीचे का वाल्व खुल जाता है। इससे सिलेंडर ऊपर उठ जाता है व तैयार होकर पनीर हूप में चला जाता है। इसे ठंडे जल में दो से तीन घंटे तक रखा जाता है, तत्पश्चात इसे पैक करके बाजार में वितरित किया जाता है।

दुग्ध उत्पादों के गुणवत्ता मूल्यांकन के लिए स्वचालन विधि

भारत के तटीय क्षेत्र में मौसम वर्ष भर प्राय: गर्म व उमस भरा रहता है। यहां खाद्य पदार्थों को उत्तम गुणवत्ता के साथ अधिक समय तक संरक्षित रखना खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के लिए बड़ी चुनौती है। अधिक तापमान वाली जगहों पर दूध व इस मौसम में दुग्ध उत्पाद बहुत ही जल्दी खराब होने लगते हैं। उत्तर भारत के कई राज्यों में ठंड के मौसम में तो ऐसे खाद्य पदार्थ लंबे समय तक उत्तम गुणवत्ता के साथ संरक्षित रखे जा सकते हैं। परंतु यह पाया गया है कि भारतीय मौसम में खासकर गर्मियों के मौसम में दुग्ध व अन्य खाद्य उत्पाद बहुत ही जल्दी खराब हो जाते हैं। गाय के दुग्ध व इनके उत्पादों की शेल्फ लाइफ बढ़ाना शोधकर्ताओं का मुख्य कार्य है। इसके लिए कई तकनीकें अपनाई जाती हैं। दुग्ध व दुग्ध के उत्पादों के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों की शेल्फ लाइफ के दौरान इनमें होने वाले परिवर्तन मानों का मूल्यांकन व मापन मुख्यत: दो तरीकों से किया जाता है। पहली विधि में पनीर व खाद्य पदार्थों के गुणों का मूल्यांकन विशेषज्ञों द्वारा अपने अनुभव के आधार पर उनकी स्थिति देखकर जैसे-खाद्य पदार्थों की वर्तमान अवस्था, रंग और गंध आदि देखकर किया जाता है। इस विधि द्वारा प्राप्त परिणामों में अनेक प्रकार की विविधता होती है व प्राप्त परिणाम प्राय: सटीक नहीं होते हैं।

पनीर प्रेसिंग हेतु स्वचालित मशीन (क) फ्रंट पैनल (ख) आंतरिक संरचना

स्वचालन विधि द्वारा बनाये गए पनीर नमूनों का गुणवत्ता मूल्यांकन

उपरोक्त विधि से बने पनीर के नमूनों का मानक विधियों का प्रयोग करके गुणवत्ता मूल्यांकन किया गया। न्यूमैटिक सिलेंडर द्वारा पनीर प्रेस के ऊपर लगाने वाले दाब का मान 2.5 से 3.5 कि.ग्रा./सें.मी.^{2} के मध्य उत्तम पाया गया व यह दाब 10 से 15 मिनट की अवधि तक पनीर हूप के ऊपर लगाया जाता है। इस प्रकार स्वचालन विधि से तैयार किए गए पनीर की गुणवत्ता की जांच की गई। इसमें नमी की मात्रा लगभग 50 से 58 प्रतिशत तक पाई गई जो उत्तम गुणवत्ता के पनीर में होती है। इसी प्रकार टैक्स्चर एनालाइजर में परीक्षण कर पनीर के नमूनों के टैक्स्चर गुणवत्ता मान प्राप्त किए गए। पनीर नमूनों का हार्डनेस मान लगभग 22 से 42 न्यूटन के मध्य पाया गया, जो पनीर की उत्तम गुणवत्ता के लिए आवश्यक है। स्वचालन तकनीक से बनाये गए पनीर के अन्य टैक्स्चर गुण भी उत्तम गुणवत्ता के पाए गए। डिजाईन एक्सपर्ट सॉफ्टवेयर द्वारा लैब में बनाये गए पनीर के नमूनों के प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण करने पर 3.45 कि.ग्रा./सें.मी. का दाब व 13.15 मिनट का मान पनीर की उत्तम गुणवत्ता के लिए सर्वोत्तम पाया गया। ■

वर्षा आधारित खेती से अधिक आय

राज सिंह, विनोद कुमार सिंह और **संजय सिंह राठौर**
सस्य विज्ञान संभाग
भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

“ वर्षा, जल का महत्वपूर्ण स्रोत है। इसलिए आवश्यकता है कि बहकर व्यर्थ हो जाने वाले वर्षा जल को बचाने के लिए जलाशयों में संचित कर उसके उपयोग व क्षमता को बढ़ाया जाए। उन्नत तकनीकों के प्रयोग से जल संचित करके फसलों में जीवन रक्षक सिंचाई या फसलों के लिए नमी की उपलब्धता को बढ़ाकर अधिक फसल उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इस फसल प्रणाली में उचित फसलों एवं उनकी किस्मों का चुनाव बहुत महत्वपूर्ण है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में खरीफ ऋतु में फसल विविधीकरण द्वारा अधिक मुनाफा देने वाली फसलों जैसे बेबीकॉर्न, लोबिया (सब्जी के लिए) इत्यादि को उगाकर परंपरागत फसलों जैसे बाजरा या मूंग की अपेक्षा लगभग दोगुनी से अधिक आय प्राप्त की जा सकती है। रबी में बेबीकॉर्न के पश्चात कम पानी उपयोग करने वाली फसलें जैसे सरसों या चना की उन्नत किस्में उगाकर उनमें 30-35 दिनों के बाद संचित जल से एक जीवनरक्षक सिंचाई द्वारा अच्छी उपज प्राप्त कर आय को बढ़ाया जा सकता है। ”

देश में कृषि विभिन्न समस्याओं से जूझ रही है, जिसके कारण कृषि उत्पादन में वृद्धि करना कठिन चुनौती हो गई है। अनेक प्रकार की समस्याएं कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए बाधक होती जा रही है।

बढ़ती जनसंख्या के कारण शुद्ध कृषि क्षेत्र घटता जा रहा है। भूमि की उपलब्धता सन् 1951 में 0.34 हैक्टर प्रति व्यक्ति से घट कर सन् 2015 में 0.11 हैक्टर रह गई है। यह विश्व में 0.196 हैक्टर प्रति व्यक्ति की अपेक्षा काफी कम है। एक अनुमान के अनुसार देश में सन् 2050 तक यह घटकर 0.05 हैक्टर प्रति व्यक्ति रह जाएगी। इसके साथ-साथ कृषि जोत के आकार में निरंतर कमी आती जा रही है। देश में कृषि जोत का आकार 1970-71 में 2.28 हैक्टर प्रति जोत से घट कर सन 2010-11 में 1.15 हैक्टर रह गया है (सारणी-1) तथा भविष्य में यह और कम होता जाएगा।

कृषि वृद्धि दर निरंतर कमी होती जा रही है। देश के सकल घरेलू उत्पादन में कृषि

भिण्डी

उन्नत लोबिया

जल संचयन विधियों का प्रयोग

वर्षा आधारित खेती में फसलों की खेती नमी की उपलब्धता पर निर्भर करती है। इन क्षेत्रों में केवल वर्षा ही नमी का स्रोत होती है। देश में औसतन वर्षा लगभग 125 सें.मी. प्रतिवर्ष होती है। यह वर्षा देश के विभिन्न भागों में 50 सें.मी. से कम तथा 200 सें.मी. से अधिक होती है। देश में 50 सें.मी. से कम वर्षा वाले क्षेत्र उत्तरी कश्मीर, पश्चिमी राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश तथा कर्नाटक के कुछ भाग हैं, जबकि 50 से 100 सें.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, पूर्वी राजस्थान, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश एवं तमिलनाडु के दक्षिणी पठार सम्मिलित हैं। ऐसे क्षेत्र जहां औसतन वर्षा 100 से 200 सें.मी. वार्षिक होती है, उनमें दक्षिणी गुजरात, पूर्वी तमिलनाडु, पश्चिमी घाट, उत्तरी महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, ओडिशा और मध्य गंगा क्षेत्र आते हैं। देश के पश्चिमी तट, पश्चिमी घाट, उत्तर-पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र, कश्मीर, हिमाचल, उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्र, बिहार, असोम, पश्चिम बंगाल तथा ओडिशा के भाग शामिल हैं। अत: देश में वर्षा के असमान वितरण के कारण वर्षा द्वारा कुल प्राप्त जल (4000 अरब घन मीटर) में से लगभग 1870 अरब घन मीटर पानी व्यर्थ बह जाता है, उसके साथ कटाव द्वारा उपजाऊ भूमि भी बह जाती है। इस जल को जलाशयों एवं यथा स्थान पर संचयित कर फसलों को नमी उपलब्ध करायी जा सकती है एवं फसल उत्पादन को बढ़ाकर अधिक आय प्राप्त की जा सकती है।

सारणी 1. शुद्ध कृषि क्षेत्र, सिंचित क्षेत्र, खाद्यान्नों का उत्पादन तथा उर्वरकों एवं कीटनाशकों का प्रयोग

वर्ष	जनसंख्या (मिलियन)	शुद्ध कृषि क्षेत्र (मिलियन हैक्टर)	शुद्ध सिंचित क्षेत्र (मिलियन हैक्टर)	खाद्यान्नों का उत्पादन (मीट्रिक टन)	उर्वरकों का प्रयोग (मीट्रिक टन)	कीटनाशकों का प्रयोग (मीट्रिक टन)
1950-51	361.1	118.75	20.85	50.82	0.0656	-
1960-61	349.3	133.20	24.66	82.02	0.292	0.086
1970-71	548.2	140.27	31.10	108.42	2.177	0.243
1980-81	68.34	140.00	38.72	129.59	5.516	0.450
1990-91	846.5	143.00	48.02	176.32	12.546	0.750
2000-01	1028.8	141.34	55.20	196.81	17.360	0.436
2010-11	1210.8	141.56	63.66	244.49	28.122	0.555
2016-17	1340.0	138.00	66.10	273.00	25.576	0.574

की भागीदारी सन् 1950-51 में 54 प्रतिशत से घटकर सन् 2016 में 17.32 प्रतिशत रह गई है।

बढ़ती फसल सघनता, अनुचित पोषक प्रबंधन एवं भूमि के अत्याधिक दोहन के कारण भूमि की उर्वराशक्ति का ह्रास हो रहा है। भूमि में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा घटती जा रही है तथा मुख्य पोषक तत्वों जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटेशियम की कमी बढ़ती जा रही है। पोषक तत्वों की उपयोग क्षमता केवल 30 से 35 प्रतिशत है तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे जस्ता, लोहा, तांबा, बोरॉन इत्यादि की दर भी घटती जा रही है।

सारणी 2. विभिन्न क्षेत्रों के लिए पानी की आवश्यकता

क्षेत्र	पानी की आवश्यकता (अरब घन मीटर)		
	2010	2025	2050
सिंचाई	557	611	307
पीने के लिए	43	62	111
उद्योग	37	67	81
ऊर्जा	19	30	70
अन्य	54	70	111
कुल	710	843	1180

कृषि के लिए जल बहुत ही महत्वपूर्ण घटक है, लेकिन बढ़ती जनसंख्या के कारण पानी की आवश्यकता कृषि के अतिरिक्त दूसरे क्षेत्रों में भी बढ़ रही है, इसके परिणामस्वरूप पानी की उपलब्धता प्रति व्यक्ति कम हो रही है। एक अनुमान के अनुसार सन् 1951 में पानी की उपलब्धता 5177 घन मीटर प्रति व्यक्ति थी, जो घट कर सन् 2016 में 1437 घन मीटर रह गई है। अनुमान है कि यह मात्रा घटकर सन् 2050 तक 1100 घन मीटर रह जाएगी, लेकिन विभिन्न क्षेत्रों में पानी की मांग बढ़ती जा रही है। अनुमान है कि पानी की आवश्यकता सन् 2025 तक 843 अरब घन मीटर के मुकाबले सन् 2050 के 1180 अरब घन मीटर हो जाएगी (सारणी-2)। अत: पानी की लगातर मांग बढ़ने के कारण सिंचित क्षेत्र में वृद्धि करना असंभव हो जाएगा।

कृषि उत्पादन बढ़ाने में बढ़ती जनसंख्या

पूसा पालक

प्याज

चना

एवं पशुओं के लिए खाद्यान्न, दाना एवं चारा उपलब्ध कराना कठिन हो जाएगा। अत: आवश्यकता है उन्नत तकनीकों का उपयोग कर कृषि योग्य क्षेत्र की प्रति इकाई उत्पादकता को बढ़ाया जाए। देश में लगभग 74 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में वर्षा आधारित खेती होती है। इसकी औसत उपज बहुत कम है, जो एक टन प्रति हैक्टर से भी कम है। इन क्षेत्रों में उन्नत तकनीकों का उपयोग कर वर्षा आधारित क्षेत्रों की उत्पादकता को दोगुना किया जा सकता है।

पूसा सरसों

वर्षा आधारित क्षेत्रों की समस्याएं

देश में वर्षा आधारित खेती का खाद्यान्न सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान है। भविष्य में भी वर्षा आधारित कृषि की खाद्य सुरक्षा में स्थायित्व बनाए रखने के लिए विशेष भूमिका होगी। औसत उपज का काफी कम होना चिन्ता का विषय है। वर्षा आधारित क्षेत्रों की उत्पादन क्षमता औसत उत्पादन से काफी अधिक है, जिसको उन्नत तकनीकों के प्रयोग द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। परंतु ये क्षेत्र अनेक प्रकार की जलवायुवीय, मृदीय, प्रशासनिक, तकनीकी एवं सामाजिक व आर्थिक समस्याओं से ग्रसित हैं। वर्षा आधारित क्षेत्रों में कम व अनियमित वर्षा, अधिक तापमान, अधिक वायुगति एवं कम आर्द्रता के कारण वाष्पोत्सर्जन अधिक होता है। परिणामस्वरूप नमी की कमी के कारण फसलों की वृद्धि एवं उपज अच्छी नहीं होती तथा सूखे के कारण फसलों में कमी आ जाती है। देश के अनेक राज्यों जैसे महाराष्ट्र, ओडिशा, राजस्थान, तेलंगाना, मध्य प्रदेश, झारखंड, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक के आंध्र प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ के 240 से भी अधिक जिले सूखे से प्रभावित रहते हैं, परिणामस्वरूप फसल उत्पादन बहुत कम होता है। मौसम विभाग की रिपोर्ट के अनुसार दक्षिणी-पश्चिमी मानसून द्वारा सबसे अधिक (73.7 प्रतिशत) वर्षा प्राप्त होती है।

वर्षा आधारित क्षेत्र

विश्व का कुल क्षेत्रफल 510.07 मिलियन वर्ग कि.मी. है। इसमें से 70.9

सारणी 3. वर्षा के आधार पर देश के विभिन्न जलवायु क्षेत्र

जलवायु	वर्षा (मि.मी.)	फसल उगाने की अवधि (दिनों में)	क्षेत्रफल (मिलियन हैक्टर)	क्षेत्र का नाम
शीत शुष्क क्षेत्र	<500	60-90	14.3	पश्चिमी हिमालय क्षेत्र, जम्मू एवं कश्मीर
उष्ण शुष्क क्षेत्र	<500	60-90	38.1	पश्चिमी राजस्थान के कच्छ क्षेत्र, पेनिनसुला डेकेन पठार
शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्र	500-750	92-120	41.6	उत्तरी मैदानी भाग एवं केन्द्रीय उच्च भूमि
नम/अर्द्ध शुष्क क्षेत्र	750-1000	90-150	72.2	गंगा के क्षेत्र बुन्देलखंड, मालवा, पूर्वी गुजरात, मध्य एवं पश्चिमी महाराष्ट्र, विदर्भ, उत्तरी तेलंगाना, तमिलनाडु मैदानी क्षेत्र, पंजाब व रूहेलखंड क्षेत्र
शुष्क उप आर्द्र क्षेत्र	1000-1200	150-180	58	पश्चिमी कर्नाटक पठार, पूर्वी घाट, पश्चिमी बिहार, मालवा पठारी क्षेत्र, नर्मदा घाटी, छत्तीसगढ़ इत्यादि
नम उप आर्द्र क्षेत्र	1200-1600	150-210	35.9	सतपुड़ा रेंज, गुजरात पहाड़ी क्षेत्र, उत्तर बिहार, उत्कल मैदानी क्षेत्र एवं पूर्वी गोदावरी डेल्टा तथा मध्य हिमाचल क्षेत्र
आर्द्र क्षेत्र	100-200	180-270	33.3	मध्य हिमाचल क्षेत्र, पूर्वी व पश्चिमी हिमाचल क्षेत्र, असोम व बंगाल बेसिन क्षेत्र
अति आर्द्र क्षेत्र	72000	7270	31.3	पूर्वी हिमाचल क्षेत्र, उत्तर-पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र, पश्चिमी घाट एवं तटीय क्षेत्र

मसूर (पूसा शिवालिक)

सारणी 4. फसल विविधीकरण द्वारा खरीफ फसलों की उत्पादकता पर प्रभाव

फसल	किस्म	बाजरा समतुल्य उपज (क्विंटल/हैक्टर)	जल उपयोग क्षमता (क्विंटल/हैक्टर/मि.मी.)	बाजरा की अपेक्षा उपज में वृद्धि (प्रतिशत)
बेबीकॉर्न	जी 5414	85.40	39.17	388
लोबिया (सब्जी के लिए)	काशी कंचन	51.30	18.45	193.14
मूंग	एसएमएल-668	32.90	11.83	88.00
बाजरा	एचएचबी-67	17.50	623	0

सारणी 5. फसल विविधीकरण द्वारा रबी फसलों की उपज एवं जल उपयोग क्षमता पर प्रभाव

फसल	किस्म	सरसों समतुल्य उपज (क्विंटल/हैक्टर)	जल उपयोग क्षमता (कि.ग्रा./हैक्टर/मि.मी.)	मसूर की अपेक्षा उपज में वृद्धि (प्रतिशत)
सरसों	पूसा 28	16.20	10.53	32.80
जौ	बी एच 902	12.60	8.19	3.28
चना	पूसा 2024	20.00	13.00	63.93
मसूर	पूसा शिवालिक	12.20	7.93	0

सारणी 6. वर्षा आधारित खेती में वानस्पतिक उपज एवं आय पर प्रभाव

वानस्पतिक उपज	बाजरा समतुल्य कुल उपज (क्विंटल/हैक्टर)	शुद्ध लाभ (रुपये/हैक्टर)	आय प्रतिदिन (रुपये)	लाभ: खर्च अनुपात	बाजरा-मसूर अपेक्षा शुद्ध लाभ में वृद्धि (रुपये)
बेबीकॉर्न-सरसों	156.100	122629	573.0	1.42	105358
लोबिया (सब्जी के लिए)-जौ	90.30	52305	251.47	0.72	35034
मूंग-चना	89.40	48118	227.31	0.66	30847
बाजरा-मसूर	55.0	17271	82.64	0.31	0

सारणी 7. आय एवं जल उत्पादकता पर प्रभाव

फसल	कुल जल उपयोग (मि.मी.)	सरसों समतुल्य उपज (क्विंटल/हैक्टर)	शुद्ध लाभ (रुपये/हैक्टर)	जल उपयोग क्षमता (कि.ग्रा. हैक्टर/मि.मी.)
सरसों (पी 28)	153.8	16.20	19846	10.53
जौ (बीएच 902)	153.8	12.60	13228	8.19
चना (पूसा 2034)	153.8	20.00	30224	13.00
मसूर (पूसा शिवालिक)	153.8	12.20	15784	7.93

प्रतिशत (361.13 मिलियन वर्ग कि.मी.) क्षेत्र जल से ढका है एवं 29.1 प्रतिशत (148.94 मिलियन वर्ग कि.मी.) भूभाग है। विश्व में लगभग 11 प्रतिशत क्षेत्र (1.55 बिलियन हैक्टर) में खेती की जाती है। इसके 80.6 प्रतिशत (1.25 बिलियन हैक्टर) क्षेत्र में वर्षा आधारित खेती होती है। भारत में लगभग 54 प्रतिशत क्षेत्र में वर्षा आधारित क्षेत्र आठ जलवायु क्षेत्रों में विभाजित है (सारणी-3)।

वर्षा आधारित क्षेत्रों की भूमि की उर्वराशक्ति बहुत कम है। इन भूमि में वर्टीसोल (22 प्रतिशत), एल्फीसोल (20 प्रतिशत), एल्युवियम (21 प्रतिशत) और लेटेराइट (13 मिलियन हैक्टर) इत्यादि शामिल हैं। अधिकतर भूमि बलुई एवं दोमट होने के कारण उसकी जल धारण करने की क्षमता कम है। इसमें कार्बनिक पदार्थ नाइट्रोजन एवं अन्य पोषक तत्वों की कमी होती है। घुलनशील लवणों की अधिकता, जलभराव तथा ऊपरी सतह पर कठोर पपड़ी के कारण भूमि की उत्पादकता बहुत प्रभावित होती है। भूमि असमान होने के कारण जल एवं वायु क्षरण अधिक होता है।

वर्षा आधारित क्षेत्रों के उपयोग के लिए उन्नत तकनीकें बहुत सीमित होती हैं। फसलों और उनकी किस्मों का चुनाव वर्षा एवं नमी की उपलब्धता पर निर्भर करता है। फसल पद्धतियों का चुनाव भी नमी की उपलब्धता, भूमि प्रकार एवं संसाधनों पर निर्भर करता है। अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए अनेक उन्नत तकनीकियों जैसे उर्वरकों, कीटनाशियों एवं अन्य रसायनों के उपयोग की बहुत सीमित संभावनायें होती हैं। अत : फसल उत्पादन कम हो जाता है।

वर्षा आधारित क्षेत्रों की अनेक समस्यायें हैं, जिनके कारण फसलों की औसत उपज बहुत कम है लेकिन इन क्षेत्रों में फसल उत्पादन को बढ़ाना असंभव नहीं है, जो भी सीमित संसाधन उपलब्ध हैं, उन्नत तकनीकों का उपयोग कर उनकी क्षमता एवं उपयोगिता को बढ़ाकर अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जाए। वर्षा आधारित क्षेत्रों में उपलब्ध सीमित संसाधनों (जल, भूमि, वनस्पति एवं पोषक तत्वों) की उपयोगिता एवं क्षमता को बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार की उन्नत तकनीकों को विकसित किया जा रहा है। इनको उपयोग कर इन क्षेत्रों में फसल उत्पादन को बढ़ाया

जा सकता है तथा किसानों की आय में भी वृद्धि की जा सकती है।

वर्षा आधारित क्षेत्रों में अधिक उत्पादन एवं आय

वर्षा आधारित क्षेत्रों में अधिक उपज प्राप्त करने के लिए उचित मात्रा में नमी की उपलब्धता प्रमुख अवरोध है। वर्षा द्वारा प्राप्त जल की उपयोग क्षमता बढ़ाना बहुत ही आवश्यक है। इन क्षेत्रों में उन्नत तकनीकों के प्रयोग द्वारा पौधों के लिए जल उपलब्धता एवं पौधों द्वारा उपयोग दक्षता को बढ़ाकर उपज एवं आय में वृद्धि की जा सकती है। वर्षा जल की उपलब्धता एवं उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए अनेक उन्नत तकनीकों का उपयोग किया जा सकता है।

- फसलों एवं किस्मों में विविधता द्वारा
- प्रभावी फसल पद्धतियों के प्रयोग द्वारा
- जल संचयन की विधियों का प्रयोग
- वैकल्पिक भूउपयोग द्वारा
- उचित फसल प्रबंधन विधियों का प्रयोग
- प्रभावी सिंचाई विधियों का उपयोग

लौकी की भरपूर फसल

फसलों एवं किस्मों में विविधता द्वारा उत्पादन

वर्षा अधारित क्षेत्रों में विभिन्न पारंपरिक फसलों जैसे बाजरा, ज्वार, तिल, मंडुआ, कुल्थी, अरहर, मोठ, ग्वार, मूंग, सरसों, जौ और खेसारी इत्यादि की खेती की जाती है। अधिकतर फसलों की स्थानीय किस्मों का ही उपयोग किया जाता है। स्थानीय किस्में अधिक समय में पकती हैं, जिससे उपज एवं आय भी कम होती है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में फसल एवं किस्मों में विविधता द्वारा पारंपरिक फसलों की अपेक्षा अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है। प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ है कि फसल विविधीकरण द्वारा खरीफ ऋतु में बेबीकॉर्न की खेती द्वारा बाजरे की अपेक्षा 388 प्रतिशत एवं रबी ऋतु में चने की खेती द्वारा मसूर की अपेक्षा 63.93 प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है (सारणी-4 व 5)।

खरीफ ऋतु में फसल विविधीकरण द्वारा सबसे अधिक जल उपयोग क्षमता (39.17 कि.ग्रा./हैक्टर/मि.मी.) बेबीकॉर्न द्वारा प्राप्त की गई तथा यह बाजरे की अपेक्षा 528.73 प्रतिशत अधिक थी। इसी प्रकार रबी ऋतु में चने की खेती द्वारा मसूर की अपेक्षा 63.93 प्रतिशत अधिक जल उपयोग क्षमता पाई गई।

वानस्पतिक उपज का प्रयोग

खेती द्वारा अधिक उपज एवं अधिक आय प्राप्त करने के लिए उचित वानस्पतिक उपज की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वर्षा आधारित खेती में उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग कर उपज एवं आय बढ़ाना आसान होता है। वर्षा आधारित खेती में बेबीकॉर्न-सरसों वानस्पतिक उपज द्वारा बाजरा-मसूर वानस्पतिक उपज की अपेक्षा 184.7 प्रतिशत अधिक उपज, 1,05,358 रुपये अधिक शुद्ध लाभ

उचित फसल प्रबंधन विधियां

वर्षा आधारित क्षेत्रों में प्राय: किसान फसल उगाने के लिए पारंपरिक विधियां जैसे स्थानीय किस्मों का प्रयोग, छिटककर बुआई करना, बीज की उचित मात्रा का प्रयोग न करना, उपयुक्त पोषक प्रबंधन न करना, खरपतवार नियंत्रण एवं कीट व रोगों का उपचार न करना इत्यादि करते हैं। परिणामस्वरूप फसल उत्पादन काफी प्रभावित होता है। यदि वर्षा आधारित क्षेत्रों में फसल उत्पादन की उन्नत तकनीकों का उपयोग किया जाए तो उपज में काफी वृद्धि की जा सकती है। खेती के लिए उन्नत किस्में, बीज की उचित मात्रा, पंक्तियों में बुआई, फसलों की आवश्यकतानुसार पोषक तत्वों का प्रयोग, खरपतवारों का उचित समय पर नियंत्रण तथा कीट एवं रोगों की रोकथाम के लिए उचित समय पर सही कीटनाशकों का प्रयोग करना चाहिए। फफूंदनाशियों का प्रयोग और खेत में नमी संरक्षण के लिए उचित विधियों जैसे खेत की मेड़बंदी करना, मेड़ एवं कूंड़ विधि तथा बिछावन का प्रयोग इत्यादि का उपयोग किया जाए तो वर्षा आधारित खेती में अधिक उत्पादन एवं लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

सारणी 8. बूंद-बूंद विधि द्वारा सिंचाई करने पर उत्पादन, आय एवं जल उपयोग क्षमता पर प्रभाव

फसलीय पत्ती	भिन्डी समतुल्य कुल उत्पादन (क्विं./हैक्टर)	कुल उत्पादन लागत (रु./हैक्टर)	शुद्ध लाभ (रुपये/ हैक्टर)	जल उपयोग क्षमता (रु./ है./मि.मी.)	कुल जल उपयोग (मि.मी.)
लौकी-प्याज- प्याज	225.50	142950	195350	64.65	740.28
बेबीकॉर्न-पालक-भिन्डी	293.90	148756	292092	76.16	943.1
भिन्डी-मटर-बेबीकॉर्न	163.00	149696	94854	73.70	938.31
लौकी-सरसों साग-लौकी	189.40	117916	166184	70.14	864.95

फालसा एंव लोबिया (सब्जी के लिए)

प्रति हैक्टर एवं 490.36 रुपये प्रतिदिन अधिक आमदनी प्राप्त की गई (सारणी-6)।

जलाशयों में संचित जल द्वारा वर्षा आधारित क्षेत्रों में जीवनरक्षक सिंचाई प्रदान कर रबी ऋतु में भी सफलतापूर्वक फसलों को उगाया जा सकता है। रबी ऋतु में केवल 5 से 6 सें.मी. की जीवनरक्षक सिंचाई, बुआई के 30 से 35 दिनों बाद करने से रबी ऋतु में विभिन्न फसलों जैसे सरसों, जौ, चना व मसूर द्वारा अच्छी उपज, शुद्ध लाभ एवं जल उत्पादकता प्राप्त की गई (सारणी-7)।

अध्ययन से पता चला है कि एक जीवन रक्षक सिंचाई प्रदान कर रबी ऋतु में भी अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। वर्षा जल को तालाब, टैंक, जलाशय इत्यादि में संचय कर लिया जाता है। एक हैक्टर क्षेत्र में 5 से 6 सें.मी. सिंचाई करने के लिए 5 से 6 लाख लीटर जल की आवश्यकता होती है। उपरोक्त जल की मात्रा को 20 मीटर लंबे, 10 मीटर चौड़े एवं 3 से 3.5 मीटर गहरे जलाशय में एकत्रित कर सकते हैं।

वैकल्पिक भूउपयोग द्वारा

वर्षा आधारित क्षेत्रों में कम वर्षा एवं उसके असमान वितरण के कारण खेती करना मुश्किल हो जाता है। वर्षा कम होने या उसके असमान वितरण होने के कारण फसल उत्पादन करना बहुत कठिन होता है तथा उसके असफल होने की आशंका रहती है। ऐसे स्थानों में भूमि के वैकल्पिक उपयोग द्वारा सूखे की स्थिति में भी कुछ न कुछ प्राप्त किया जा सकता है। वैकल्पिक भूउपयोग में सस्य वानिकी, सस्य बागवानी और वानिकी चरागाह इत्यादि का प्रयोग कर वर्षा आधारित क्षेत्रों में बहुवर्षीय पौधों द्वारा लकड़ी, फल एवं चारे के रूप में कम वर्षा की स्थिति में भी प्राप्त कर आजीविका को टिकाऊ बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त बहुवर्षीय पौधे के साथ फसलों को उगाकर अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है।

प्रभावी सिंचाई विधियों का उपयोग

किसान सिंचाई के लिए नहर, ट्यूबवैल, कुंए व तालाबों के पानी पर निर्भर रहते हैं। सिंचाई के लिए उपयुक्त पानी उपलब्ध न होने की स्थिति में किसान नालों में बहने वाले अपशिष्ट जल को उपचारित कर उसको सिंचाई के लिए प्रयोग कर सकते हैं। सिंचाई की उचित विधि का प्रयोग कर कम पानी द्वारा अधिक उत्पादन एवं लाभ प्राप्त किया जा सकता है। वर्षा आधारित खेती में रबी व जायद ऋतु में बूंद-बूंद सिंचाई विधि द्वारा सिंचाई करने पर कम पानी का उपयोग कर अधिक उत्पादन एवं आय प्राप्त की जा सकती है। फसलीय सघनता को 300 प्रतिशत तक एवं शुद्ध आय को एक लाख रुपये से अधिक तक प्राप्त कर सकते हैं ।

वर्षा आधारित क्षेत्रों में यदि आसपास अपशिष्ट जल उपलब्ध हो तो रबी एवं जायद ऋतु में भी फसलें सफलतापूर्वक उगायी जा सकती हैं। बूंद-बूंद विधि द्वारा सिंचाई कर कम पानी के उपयोग द्वारा सघन फसलीय प्रणाली का प्रयोग करते हुए अधिक लाभ देने वाली फसलें जैसे बेबीकॉर्न, पालक एवं भिंडी की उन्नत प्रजातियों को फसलीय प्रणाली बेबीकॉर्न-पालक-भिंडी में उगाकर वर्ष में 2,92,092 रुपये प्रति हैक्टर तक शुद्ध लाभ और 1,050 रुपये की प्रतिदिन आय प्राप्त की जा सकती है। इस फसलीय प्रणाली में बेबीकॉर्न की उन्नत किस्म जैसे *जी-5414* की खरीफ ऋतु में जुलाई में बुआई की जा सकती है। फसल की कटाई 15 सितंबर से पहले कर पालक की उन्नत किस्म जैसे *पूसा ऑल ग्रीन* की बुआई अक्टूबर में करके फसल की चार कटाई फरवरी तक प्राप्त की जा सकती है। इसके उपरांत भिंडी की उन्नत किस्म जैसे *पूसा ए-4* की बुआई मार्च में करके 15 जून तक फसल की अंतिम तुड़ाई की जा सकती है। उक्त फसलीय प्रणाली द्वारा किसान कम संसाधनों में भी अपनी उपज एवं आय में संतोषजनक वृद्धि कर रोजगार की संभावनायें बढ़ा सकते हैं।

जिन क्षेत्रों में जल उपलब्ध हो, तो उन क्षेत्रों में उन्नत तकनीकों द्वारा बूंद-बूंद सिंचाई विधि द्वारा सिंचित कर अधिक उपज उत्पादन एवं आय प्राप्त की जा सकती है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में खरीफ ऋतु में बेबीकॉर्न, रबी में पालक एवं जायद में भिंडी उगाकर सीमित संसाधनों का प्रयोग कर ढाई लाख रुपये प्रति हैक्टर से अधिक शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार वर्षा आधारित क्षेत्रों में वर्षा जल को संचित कर फसलों में जीवनरक्षक सिंचाई द्वारा एवं अपशिष्ट जल उपलब्ध होने पर फिर उसे उपचारित कर बूंद-बूंद सिंचाई विधि का प्रयोग कर फसल विविधीकरण द्वारा उचित फसल प्रणाली में उन्नत किस्मों को उगाकर सीमित संसाधनों वाले क्षेत्रों में भी किसानों की आय को आसानी से दोगुना किया जा सकता है। ■

लेखकों से आग्रह

हमारे लेखक बंधु *खेती* पत्रिका के लिए अपने लेख और संबंधित फोटो, कवरिंग लैटर के साथ सिर्फ ई-मेल पर ही भेजें। ध्यान रखें कि फोटो जेपीजे फॉर्मेट में और उच्च रेज्योल्यूशन की हों। लेख में अधिकतम 1500 शब्दों की संख्या रखने का प्रयास करें। इसके अतिरिक्त सुझाव और प्रतिक्रियाएं भी ई-मेल के माध्यम से भेज सकते हैं। भेजने के लिए कृपया कृतिदेव 010 टाइप फेस का प्रयोग करें।

हमारा ई-मेल पता है :
khetidipa@gmail.com

–संपादक

बदलती जलवायु के दुष्परिणामों को कम करने के उपाय

के.एन. तिवारी[1] और **योगेन्द्र कुमार**[2]

" वैश्विक तपन के कारण जलवायु तेजी से बदल रही है। ऐसे में इसका असर कृषि पर भी पड़ रहा है। बदलते मौसम के कारण एक तरफ जहां फसलों की उत्पादकता घटने के साथ ही उनमें लगने वाले कीटों और रोगों की संख्या बढ़ने की आशंका है वहीं वातावरण में मानव और पशुओं के लिए घातक गैसों का उत्सर्जन भी बढ़ सकता है। इससे निपटने के लिए अभी से खेती में विविधता को अपनाने के साथ ही वैश्विक तपन के लिए जिम्मेदार गैसों का उत्सर्जन कम करने के लिए दलहनी फसलों की खेती, मिश्रित खेती और सहफसली खेती का विस्तार करना होगा। इसके साथ ही फसलों की उत्पादकता और रोगों से बचाने वाले रासायनिक खादों और कीटनाशकों के इस्तेमाल को कम करना होगा। जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणाम से कृषि को बचाने के लिए कृषि, वानिकी और बागवानी क्षेत्रों में व्यापक सुधार के साथ ही देसी नस्ल के पशुओं को प्रोत्साहन और हर एक स्तर पर ऊर्जा के उपयोग को न्यूनतम करना होगा। "

कृषि उत्पादन, मौसम जलवायु और पानी की उपलब्धता पर निर्भर करता है। इनमें से किसी भी कारक के बदलने अथवा उनके स्वरूप में परिवर्तन से कृषि उत्पादन निश्चित रूप से प्रभावित होता है। गत एक शताब्दी में पेट्रोलियम पदार्थों एवं अन्य जीवाश्म ईंधनों का उपयोग बढ़ा है। परिवहन के साधनों में अभूतपूर्व प्रगति के कारण वाहनों से उत्सर्जित खतरनाक जहरीली गैसों की मात्रा वातावरण में बढ़ी है। आज पूरी दुनिया जलवायु परिवर्तन से प्रभावित हो रही है। जलवायु में होने वाले ये परिवर्तन ग्लेशियर व आर्कटिक क्षेत्रों से लेकर ऊष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों तक को अपनी चपेट में ले रहे हैं। ये प्रभाव अलग-अलग रूप से कहीं अधिक तो कहीं कम महसूस किए जा रहे हैं। अत: वैश्विक-तपन से निपटने के लिए व्यापक स्तर पर तैयारी अभी से शुरू करने की नितांत आवश्यकता है। भारत जैसे अत्यधिक जनसंख्या वाले देशों पर वैश्विक तपन (ग्लोबल वार्मिंग) के दूरगामी प्रभाव पड़ने की आशंका है। हिमालय के हिमखंडों के पिघलने और उपलब्ध जल के बढ़ते वाष्पोत्सर्जन के कारण उत्तर भारत में पानी की भारी कमी हो सकती है। दक्षिणी भारत के अधिकतर क्षेत्रों में तो पहले से ही सिंचाई जल की उपलब्धता कम है और

[1]पूर्व निदेशक, इंटरनेशनल प्लान्ट न्यूट्रीशन इंस्टीट्यूट एवं कंसल्टेंट, इफको, 5/1074, विराम खंड, गोमती नगर, लखनऊ-226010 (उत्तर प्रदेश); [2]विपणन निदेशक, इंडियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव लिमिटेड, इफको सदन, सी 1, डिस्ट्रिक्ट सेंटर, साकेत प्लेस, नई दिल्ली-110019

बदलती जलवायु का असर

वैश्विक तपन के वर्तमान संकट को देखते हुए जलवायु परिवर्तन के दृष्टिकोण से खेतों में विविधता तथा फसलों के साथ वृक्षों व पशुओं का संयोजन बहुत मायने रखता है। दलहनी फसलों की खेती, मिश्रित खेती व सहफसली खेती का विस्तार करना आवश्यक हो गया है। संतुलित एवं सक्षम उर्वरक प्रयोग, न्यूनतम भूपरिष्करण और शून्य कर्षण के द्वारा हम फसलोत्पादन पर होने वाले खर्च को कम कर सकते हैं। बदलते मौसम के अनुसार हमें बुआई के समय में भी बदलाव लाने होंगे ताकि बढ़ते तापमान का प्रभाव कम हो। फसलों के कैलेण्डर में कुछ बदलाव लाकर गर्म व नम मौसम का सही उपयोग किया जा सकता है। हमें फसलकीटों, रोगकारकों व खरपतवारों के प्राकृतिक शत्रुओं के नियंत्रण के बेहतर तरीकों को भी अपनाना होगा, ताकि रसायनों का प्रयोग कम से कम करना पड़े और कृषि जैवविविधता भी उचित स्तर तक बनी रहे। हमें कृषि, वानिकी व बागवानी के क्षेत्रों में व्यापक सुधार के साथ-साथ जीवन के हर स्तर पर न्यूनतम आवश्यक ऊर्जा के उपयोग को बढ़ावा देना होगा। जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कम करने के लिए देसी नस्लों को प्रोत्साहन देना होगा।

वैश्विक तपन के कारण इसमें और अधिक कमी होने की आशंका है।

वैश्विक तपन के प्रमुख कारण

ग्रीनहाउस प्रभाव

हरितगृह प्रभाव वह प्रक्रिया है, जिसमें पृथ्वी से टकराकर लौटने वाली सूरज की किरणों को वातावरण में उपस्थित कुछ गैसें अवशोषित कर लेती हैं। परिणामस्वरूप पृथ्वी के तापमान में वृद्धि होती है।

कारक गैसें

कार्बनडाइऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस-ऑक्साइड, क्लोरोफ्लोरो-कार्बन तथा ओजोन मुख्य गैसें हैं, जो हरितगृह प्रभाव की कारक हैं। वातावरण में इनकी निरंतर बढ़ती मात्रा से वैश्विक-तपन एवं जलवायु परिवर्तन का खतरा दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है।

कार्बनडाइऑक्साइड

मनुष्य की पहली आवश्यकता भोजन है। इसके उत्पादन में प्रयुक्त विभिन्न कृषि क्रियाओं में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से ऊर्जा का अत्यधिक उपयोग होता है। इसके फलस्वरूप कार्बनडाइऑक्साइड का उत्सर्जन भी अधिक होता है। औद्योगिकीकरण से पहले की तुलना में वायु में कार्बनडाइऑक्साइड का स्तर आज 31 प्रतिशत बढ़ गया है। यह गैस वातावरण में 0.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही है। वैश्विक-उष्णता बढ़ाने में कार्बनडाइऑक्साइड का योगदान 55 प्रतिशत है।

कार्बनडाइऑक्साइड के अत्यधिक उत्सर्जन के लिए जीवाश्म ईंधन (पेट्रोलियम और कोयला इत्यादि) से चलने वाले ऊर्जा संयंत्र और ऑटोमोबाइल अधिक जिम्मेदार हैं। चूंकि वन, कार्बनडाइऑक्साइड के प्रमुख अवशोषक होते हैं, अत: वन-विनाश इस गैस की वातावरण में निरंतर वृद्धि का एक प्रमुख कारण है।

मीथेन

कार्बनडाइऑक्साइड की तुलना में मीथेन की वैश्विक तपन क्षमता क्रमश: 22 गुना अधिक होती है। मीथेन 1 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से वातावरण में बढ़ रही है। यह गैस कार्बनडाइऑक्साइड की तुलना में 20 गुना ज्यादा प्रभावी है। पिछले 100 वर्षों में वातावरण में मीथेन की मात्रा में दोगुनी वृद्धि हुई है। कुल हरितगृह गैसों में मीथेन 14 प्रतिशत है, जिसमें दो-तिहाई हिस्सा कृषि द्वारा उत्सर्जित होता है। मीथेन उत्सर्जन प्रमुख रूप से जुगाली करने वाले पशुओं के पेट से, रोपण-पद्धति से उगाए जाने वाले धान के खेतों व दलदली क्षेत्रों से होता है। अनुमानत: वर्ष 2050 तक मीथेन एक प्रमुख हरितगृह गैस होगी। इस गैस का वैश्विक तपन में 20 प्रतिशत का योगदान है। वातावरण में उत्सर्जित होने वाली कुल मीथेन की अधिकाधिक मात्रा 'रोपण पद्धति' वाले धान के खेतों व दलदली क्षेत्रों से निकलती है।

नाइट्रस ऑक्साइड

नाइट्रस ऑक्साइड का उत्सर्जन मुख्य रूप से फसलों में प्रयोग किए गए नाइट्रोजनधारी उर्वरकों के कारण होता है। यह 0.3 प्रतिशत की दर से वातावरण में बढ़ रही है। जैव-ईंधन, जीवाश्म-ईंधन और कृषि में रासायनिक खादों का बढ़ता उपयोग नाइट्रसऑक्साइड के उत्सर्जन के लिए उत्तरदायी है।

स्तर ओजोन

यह 0.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वातावरण में बढ़ रही है। ओजोन का निर्माण आमतौर से सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में नाइट्रोजनडाइऑक्साइड तथा हाइड्रोकार्बन की प्रतिक्रिया स्वरूप होता है। ओजोन गैस का वैश्विक ताप वृद्धि में 2 प्रतिशत का योगदान है।

यह सच है कि ओजोन परत हमारी रक्षा करती है, किन्तु इसका मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि ओजोन हर प्रकार से हमारे लिए लाभदायक ही है। पृथ्वी के तापमान को बढ़ाने और जलवायु में परिवर्तन लाने में एक अन्य प्रकार की ओजोन का भी योगदान होता है। ओजोन वायुमंडल के निचले भाग में निर्मित होती है। इसके मुख्य स्रोत हैं: पेट्रोल और कोयला जैसे ईंधन। इसके अलावा मीथेन भी वायुमंडल के निचले भाग में ओजोन गैस का निर्माण करती है। परिणामस्वरूप पृथ्वी का तापमान बढ़ता है और जलवायु परिवर्तन का संकट पैदा होता है।

क्लोरोफ्लोरो कार्बन

जलवायु परिवर्तन का अन्य कारण है-क्लोरोफ्लोरो कार्बन का उत्सर्जन। यह वायुमंडल में ऊपर जाती है और ओजोन परत को क्षति पहुंचाती है। ओजोन परत, सौर-विकिरण में उपस्थित पराबैंगनी किरणों से धरती के प्राणियों की रक्षा करती है और जीवनरक्षक छतरी का काम करती है। इस गैस का उपयोग आमतौर से रेफ्रिजरेटर, एयरकंडीशनर फोम और एरोसोल आदि में होता है। वातावरण में इसकी मात्रा 0.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही है। इसकी ताप वृद्धि क्षमता बहुत अधिक है। हमारे देश में

कृषि में समुचित प्रबंधन से ग्रीनहाउस प्रभाव पर नियंत्रण

कुल ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कृषि, पशुपालन व अन्य संबंधित क्रियाओं का योगदान लगभग 29 प्रतिशत है। इसके अलावा कुल मीथेन व कुल नाइट्रस-ऑक्साइड के उत्सर्जन का क्रमशः 65 प्रतिशत और 90 प्रतिशत भाग भी इन्हीं क्षेत्रों से होता है। कृषि, वानिकी व पशुपालन के क्षेत्रों में उचित प्रबंधन के द्वारा हम इन हरितगृह गैसों के उत्सर्जन को काफी हद तक कम करके वैश्विक तपन की गति को धीमा कर सकते हैं।

खेती पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन एक ऐसा कारक है, जिससे प्रभावित होकर कृषि अपना स्वरूप बदल सकती है। तापमान बढ़ने और ठंड के महीनों में कमी होने से गेहूं जैसी सर्वाधिक महत्वपूर्ण फसल की उत्पादकता में भारी गिरावट होने की आशंका से इंकार नहीं किया जा सकता है। दूसरी ओर अचानक बाढ़, सूखा व सिंचाई जल की कमी से धान के उत्पादन पर भी दुष्प्रभाव पड़ सकता है। इस प्रकार कृषि उत्पादकता में कमी आने से हमारी खाद्यान्न एवं पोषण सुरक्षा खतरे में आ सकती है।

मृदा स्वास्थ्य पर असर

कृषि के अन्य घटकों की तरह मृदा भी जलवायु परिवर्तन से प्रभावित हो रही है। कार्बनिक खादों के घटते प्रयोग के कारण मृदा में जैविक कार्बन की मात्रा घट रही है। ऐसे में आशंका है कि अब तापमान बढ़ने से मृदा की नमी और उपजाऊपन प्रभावित होगा। मृदा में लवणता बढ़ेगी और जैवविविधता घटती जाएगी। भूमिगत जलस्तर गिरने से मृदा उर्वरता भी प्रभावित होगी। बाढ़ जैसी आपदाओं के कारण भूक्षरण अधिक होगा वहीं सूखे के कारण बंजरता बढ़ेगी। पेड़-पौधों की कम होती संख्या तथा जैवविविधता के अभाव के कारण मृदा का उपजाऊपन घटता जाएगा।

फसल उत्पादकता पर प्रभाव

यदि तापमान 2^0 सेल्सियस के करीब बढ़ता है तो अधिकांश स्थानों पर गेहूं की उत्पादकता में कमी आयेगी। जहां उत्पादकता ज्यादा है जैसे उत्तर भारत में, वहां कम प्रभाव दिखेगा, जहां कम उत्पादकता है, वहां ज्यादा प्रभाव दिखाई देगा। प्रत्येक 1^0 सेल्सियस बढ़ने पर गेहूं का उत्पादन 40-50 लाख टन कम होता जाएगा। अगर किसान गेहूं की बुआई का समय सही कर लें तो उत्पादन में 1-2 टन प्रति हैक्टर की गिरावट कम हो सकती है।

हरितगृह गैसों के उत्सर्जन के लिए जिम्मेदार कारक

- नगरीकरण
- औद्योगिकीकरण
- कोयले पर आधारित विद्युत तापगृह
- तकनीकी
- परिवहन क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन
- मानव जीवन के रहनसहन में परिवर्तन (विलासितापूर्ण जीवनशैली के कारण एयरकंडिशनर, रेफ्रिजरेटर और परफ्यूम आदि का बड़े पैमाने पर उपयोग)
- आधुनिक कृषि में रासायनिक खादों का बढ़ता प्रयोग
- धान की खेती के क्षेत्रफल में वृद्धि
- शाकभक्षी पशुओं की संख्या में वृद्धि आदि।

उत्पादन की दृष्टि से धान विश्व का दूसरा प्रमुख खाद्यान्न है। विश्व की सबसे ज्यादा जनसंख्या चावल पर ही निर्भर है। धान अत्यधिक पानी चाहने वाली फसल है। अत : सूखे व बाढ़ से इसकी उत्पादकता अधिक प्रभावित होती है। हमारे देश में कुल कृषि क्षेत्र का 42.5 प्रतिशत हिस्सा धान की खेती का है। तापमान में वृद्धि के साथ-साथ धान के उत्पादन में गिरावट आने लगी है। अनुमान है कि 2^0 सेल्सियस तापमान वृद्धि से धान का उत्पादन 0.75 टन प्रति हैक्टर कम हो जाएगा। देश के पूर्वी हिस्से का धान उत्पादन अधिक प्रभावित होगा, जिससे अनाज की उपलब्धता में कमी आ जाएगी। धान के अधिकांश क्षेत्रफल में 'रोपण-पद्धति' से खेती होने के कारण खेतों में अधिक समय तक पानी भरा रहता है। ऐसे में जलमग्न मृदा के अंदर कार्बनिक यौगिकों के विघटन से बनने वाली मीथेन गैस की भारी मात्रा धान के पौधों के माध्यम से वातावरण में उत्सर्जित होती रहती है। धान के खेतों से निकलने वाली मीथेन गैस के लिए कम पानी वाले धान की खेती लाभदायक होगी। नई उन्नत प्रजातियां, जिसमें खेत में पानी का जमाव कम करना पड़े, उचित रहेंगी।

भविष्य में मरूस्थलों में अधिक वर्षा और कृषि वाले क्षेत्रों में कम वर्षा के कारण विशाल मानव विस्थापन को बढ़ावा मिलेगा। इससे सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक ताना-बाना प्रभावित होगा। बाढ़, सूखा तथा आंधी-तूफान जैसी बढ़ती प्राकृतिक आपदाओं के कारण अनाज उत्पादन में गिरावट आयेगी, जो भुखमरी और कुपोषण का कारण बनेगी।

जलवायु परिवर्तन से कीट व रोगों की समस्या बढ़ेगी। तापमान, नमी तथा वातावरण की गैसों से पौधों, फफूंद तथा अन्य रोगाणुओं के प्रजनन में वृद्धि तथा कीटों और उनके प्राकृतिक शत्रुओं के अंतर्संबंधों में बदलाव आदि दुष्परिणाम देखने को मिलेंगे।

जलवायु परिवर्तन से केवल फसलों की उत्पादकता ही नहीं प्रभावित होगी वरन् उनकी गुणवत्ता पर भी दुष्प्रभाव पड़ेगा। अनाज में पोषक तत्वों और प्रोटीन की कमी पाई जाएगी, जिस कारण मनुष्य का स्वास्थ्य प्रभावित होगा। इसकी भरपाई कृत्रिम विकल्पों से करनी पड़ेगी। गंगा के मैदानी क्षेत्रों में तापमान वृद्धि के कारण अधिकांश फसलों की उत्पादकता में गिरावट की भी आशंका है।

पारिस्थितिकी असंतुलन का खतरा

तटीय वनस्पतियों व वृक्षों का विनाश पारिस्थितिक असंतुलन का खतरा बढ़ायेगा। तट की स्थिरता वृक्षों के विनाश से प्रभावित होगी। उष्ण कटिबंधीय वनों में आग की घटनाओं में वृद्धि और वनों के विनाश से जैव विविधता में कमी आयेगी।

जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव को कम करने के उपाय

भारतीय कृषि पर जलवायु परिवर्तन से होने वाले प्रभावों को कम करने के लिए अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाने होंगे, जिनमें मुख्य इस प्रकार हैं:

फसल उत्पादन के लिए नई तकनीकों का विकास

फसलों से वांछित उत्पादन लेने के लिए ऐसी किस्मों की खेती को बढ़ावा देना होगा, जो बदलते मौसम के अनुकूल हों। इसके लिए इन किस्मों को विकसित करना होगा, जो अधिक तापमान, सूखा और जल भराव होने पर भी सफलतापूर्वक उत्पादन दे सकें। आने वाले समय में ऐसी किस्मों की जरूरत होगी, जो उर्वरक और सूर्य विकिरण उपयोग के मामले में अधिक सक्षम हों। लवणीयता और क्षारीयता को सहन करने वाली किस्मों का विकास करना होगा। ऐसी अनेक पारंपरिक व प्राचीन प्रजातियां हैं, जिनका संरक्षण करना होगा। कम मीथेन उत्सर्जन करने वाली प्रजातियों के विकास की भी आवश्यकता है।

फसल चक्र

मृदा उर्वरता संवर्द्धन के लिए दलहनी फसलों का विस्तार करना होगा। फसल चक्रों में परिवर्तन से रोग, कीड़े और खरपतवार की समस्या कम होगी। दलहनी फसलों (अरहर) के साथ कपास जैसी गहरी जड़ वाली फसलयुक्त, फसल चक्र विशेष लाभदायी होंगे। इससे जैविक कार्बन की मात्रा में वृद्धि भी होगी। दलहनी फसलों की खेती बढ़ाने पर नाइट्रोजनधारी उर्वरकों का प्रयोग स्वत: कम हो जाएगा, जिससे नाइट्रस ऑक्साइड का दुष्प्रभाव कम होगा।

अंतवर्ती फसलें

खरपतवारों की वृद्धि रुक जाएगी, उदाहरण के लिए मक्के के साथ लोबिया, ज्वार के साथ अरहर उगाने से उकठा रोग और खरपतवार में कमी आएगी।

कृषि का विस्तारीकरण

किसानों की आय बढ़ाने के लिए कृषि का विस्तारीकरण करना जरूरी है। धान-गेहूं फसल चक्र अपनाकर हम खाद्यान्न में आत्मनिर्भर हो गए हैं। इससे प्राकृतिक संसाधनों का दोहन अत्यधिक हुआ है। हमें कम पोषक तत्व एवं कम पानी चाहने वाली दलहनी, तिलहनी और मसाले वाली (धनिया, सौंफ, जीरा और मेथी आदि) फसलों को बढ़ावा देना चाहिए। उन्नत बीज, सही खुराक एवं सर्वोत्तम फसल प्रबंधन से धान-गेहूं की उत्पादकता दो गुनी की जा सकती है, अर्थात आधे क्षेत्रफल से ही उतना उत्पादन प्राप्त हो सकता है।

बुआई की तिथि में फेरबदल

गेहूं की समय पर बुआई, अधिक तापमान सहन करने वाली प्रजातियां, कतार से कतार की दूरी और पौध सघनता बढ़ाकर खरपतवारों की समस्या कम की जा सकती है।

सस्य विधियों में परिवर्तन

बदलते मौसम के अनुसार हमें बुआई के समय में भी बदलाव लाने होंगे ताकि बढ़ते तापमान का प्रभाव कम हो। फसलों के कैलेण्डर में कुछ बदलाव लाकर गर्म मौसम के प्रकोप से बचकर व नम मौसम का अधिक उपयोग करना होगा। मिश्रित खेती व सहफसली खेती करके जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणाम से निपटा जा सकता है। कृषि वानिकी को बढ़ावा देना, जलवायु परिवर्तन की अच्छी काट साबित होगा। यह वातावरण में मौजूद कार्बन को सोखने के साथ ही मृदा की उर्वरता बढ़ाने में मदद करेगा। साथ ही सामाजिक व आर्थिक लाभ भी होगा।

फसल कीटों, रोगकारकों व खरपतवारों का जैविक नियंत्रण

हरित क्रांति के पश्चात लगभग पूरे विश्व में कृषि का रसायनीकरण हो गया है। इससे आज मृदा उत्पादकता में कमी व स्थिरता के साथ-साथ जैवनाशी प्रतिरोधी कीटों, रोगकारकों व खरपतवारों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। अत: आज विश्व स्तर पर कृषि में रसायनों के न्यायोचित उपयोग के लिए व्यापक जन-जागरूकता लाने की नितांत आवश्यकता है। उचित बीजशोधन को अपनाकर हम कई फसल व्याधियों व कीड़ों का नियंत्रण कम रसायनों के उपयोग से ही कर सकते हैं। वातावरण और फसलोत्पादन को होने वाले नुकसान को कम कर सकते हैं। हमें फसल कीटों, रोगकारकों व खरपतवारों के प्राकृतिक शत्रुओं के नियंत्रण के बेहतर तरीकों को भी अपनाना होगा ताकि रसायनों का प्रयोग कम से कम करना पड़े और कृषि जैव विविधता भी उचित स्तर तक बनी रहे।

हरित गैस प्रभाव से फसल उत्पादकता में गिरावट

मृदा बिछावन

- मृदा बिछावन (पलवार) से कार्बन की मात्रा का संरक्षण होगा, जिससे वातावरण में कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा को बढ़ने से रोका जा सकता है।
- कतार से बोई गई फसलों में बिछावन से खरपतवार में कमी हो जाती है, जिससे खरपतवारनाशी का प्रयोग कम करना पड़ेगा। जैविक खरपतवार नियंत्रण भी कारगर होगा।

उचित पोषक तत्व प्रबंधन

फसलों को पोषक तत्वों की सही खुराक देनी होगी, जिससे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश आदि पौधों को अधिकाधिक मात्रा में उपलब्ध हो सकें। उर्वरक नाइट्रोजन का नाइट्रस ऑक्साइड के रूप में उत्सर्जन कम से कम हो सके। संतुलित एवं सक्षम उर्वरक प्रयोग से नाइट्रस ऑक्साइड का उत्सर्जन कम होगा।

जल निकास

उचित जल निकास प्रबंधन की व्यवस्था करके मृदा से मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड का उत्सर्जन कम किया जा सकता है।

खेतों में जल का संरक्षण

तापमान वृद्धि के साथ-साथ धरती पर मौजूद नमी की कमी होगी। ऐसी परिस्थिति में खेतों में नमी का संरक्षण करना और वर्षा जल को एकत्र कर सिंचाई के लिए उपयोग में लाना आवश्यक होगा। जीरो टिलेज या शून्य जुताई जैसी तकनीकों का इस्तेमाल कर पानी के अभाव से निपटा जा सकता है। शून्य जुताई के कारण धान और गेहूं की खेती में पानी की मांग में कमी हो जाती है, जबकि उपज में बढ़ोतरी होती है। इससे मृदा में जैविक पदार्थों की मात्रा भी बढ़ जाती है।

भूसा-पुआल प्रबंधन द्वारा कार्बनडाइऑक्साइड उत्सर्जन में कमी

धान तथा गेहूं के खेतों से विशाल मात्रा में पुआल और भूसा पैदा होता है। इनका उचित तरीके से प्रबंधन न करने पर पर्यावरण को भारी नुकसान होता है। आजकल कंबाइन द्वारा कटाई के बाद खेत में बची हुई जैव सामग्री को जलाने की परंपरा बढ़ती जा रही है, जिसके परिमाणस्वरूप भारी मात्रा में हरितगृह गैसों का उत्सर्जन होता है। एक अध्ययन के अनुसार पंजाब में काफी मात्रा में जैव सामग्री (भूसा या पुआल) जलाने से उत्तर भारत के विशाल भाग पर धुंध सी बन जाती है, जो वातावरण की गर्मी में वृद्धि करती है। जैव सामग्री को जलाने से भारी मात्रा में निकला हुआ धुंआ मानव एवं पशु स्वास्थ्य के लिए घातक होता है। इसके अलावा पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश आदि) का नुकसान भी होता है। यह प्रचलन पर्यावरण की दृष्टि से बहुत ही घातक है। इस पर पूर्ण प्रतिबंध के साथ-साथ व्यापक जन-जागरुकता लाने की आवश्यकता है।

कृषि-वानिकी व बागवानी को बढ़ावा

कृषि-वानिकी व बागवानी को बढ़ावा देकर हम वांछित फसलोत्पादन से

कार्बनडाइऑक्साइड की भारी मात्रा को वन व फल वृक्षों के माध्यम से संचित कर सकते हैं। फल वृक्षों के अधिकाधिक रोपण से हमें खाद्य फलों के अलावा हरितगृह प्रभाव को कम करने में भी मदद मिलेगी। इसके अलावा मौसम को ठंडा रखने, मृदाक्षरण रोकने व प्रदूषण कम करने में भी सहायता मिलेगी। क्षारीय एवं लवणीय भूमि पर क्षार एवं लवण सहनशील वन वृक्षों एवं फलदार पेड़ों के रोपण द्वारा इन समस्याग्रस्त क्षेत्रों की कृषि उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है।

मृदा उर्वरता संवर्द्धन

मृदा उर्वरता संवर्द्धन के लिए दलहनी फसलों का विस्तार करना होगा। फसल चक्रों में परिवर्तन से रोग, कीट और खरपतवार की समस्या कम होगी। दलहनी फसलों (अरहर) के साथ कपास जैसी गहरी जड़ वाली फसलयुक्त, फसल चक्र विशेष लाभदायी होंगे। इससे जैविक कार्बन की मात्रा में वृद्धि होगी। दलहनी फसलों की खेती बढ़ाने पर नाइट्रोजनधारी उर्वरकों का प्रयोग स्वत: कम हो जाएगा, जिससे नाइट्रस ऑक्साइड का दुष्प्रभाव कम हो जाएगा। मिश्रित खेती व सहफसली खेती करके जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणाम से निपटा जा सकता है।

मृदा सौरीकरण

उचित नमीयुक्त खेत तैयार करके पारदर्शी पॉलीथीन शीट से ढककर चारों ओर से सील कर देना चाहिए, ताकि सौर ऊर्जा मृदा के अंदर प्रवेश कर जाए। मृदा का तापमान बढ़ने से खरपतवार और कीट आदि मर जाएंगे। गर्मी की जुताई भी लाभकर साबित होगी।

संरक्षण कृषि

पर्यावरण में कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा कम करने के लिए आज इसकी अधिकाधिक मात्रा को मृदा कार्बन के रूप में संचित करना आवश्यक है। मृदा कार्बन का फसलोत्पादन में तो महत्व है ही, साथ ही पर्यावरण की दृष्टि से भी इसकी उपयोगिता कुछ कम नहीं है। परंपरागत भूपरिष्करण में नियमित रूप से मशीनों और ऊर्जा का अधिकाधिक उपयोग होता है। यह माना जाता है कि मृदा की तैयारी जितनी ज्यादा होगी, उत्पादन उतना ही अधिक होगा। अधिक कर्षण क्रियाओं के प्रयोग से मृदा में उपस्थित कार्बन की अधिकाधिक मात्रा कार्बनडाइऑक्साइड के रूप में मुक्त होकर वातावरण में इसकी मात्रा बढ़ा देती है। इसके अलावा अत्यधिक भूपरिष्करण मृदा कटाव को भी बढ़ावा देता है, जिसके प्रबंधन के लिए अतिरिक्त ऊर्जा खर्च होती है। संरक्षण कृषि के अंतर्गत हम कृषि में उपयोग किए जाने वाले संसाधनों (फसल उत्पादन व सुरक्षा के लिए) के न्यूनतम उपयोग के द्वारा ही अधिकतम उत्पादकता प्राप्त कर सकते हैं।

आज गेहूं व धान के अलावा चना, मटर, मसूर, सरसों व अलसी जैसी फसलों का उचित उत्पादन हम शून्य जुताई के माध्यम से सफलतापूर्वक कर रहे हैं। शाकनाशी रसायनों द्वारा खरपतवार नियंत्रण की उन्नत तकनीकों ने खेती की न्यूनतम जुताई के प्रयोग को और आसान बना दिया है। धान व गेहूं की कटाई के उपरांत खेत में बची जैव सामग्री पर भी आज उन्नत तरीके वाली शून्य जुताई कर बुआई करने वाली मशीनें अच्छी तरह चल सकती हैं। इसके साथ ही बुआई का कार्य बिना किसी बाधा के सम्पन्न कर सकती हैं।

जलवायु परिवर्तन से पशु स्वास्थ्य पर असर

समन्वित खेती का महत्व

समन्वित खेती का अर्थ है-घर पशुशाला और खेत के बीच उचित सामंजस्य व इनकी एक-दूसरे पर निर्भरता। जलवायु परिवर्तन के दृष्टिकोण से खेतों में विविधता तथा फसलों के साथ वृक्षों व पशुओं का संयोजन बहुत मायने रखता है। आज खेती की सबसे बड़ी मांग यही है। अध्ययनों में यह पाया गया है कि जहां समग्रता रही है वहां नुकसान का प्रतिशत भी कम रहा है, जबकि जहां एकल फसलें अथवा केवल पशुओं पर निर्भरता थी, वहां नुकसान अधिक हुआ। खेती में समग्रता किसान को आत्मनिर्भर बनाती है और बाजार पर उसकी निर्भरता कम होती है। कठिन समय में भी उसकी खाद्य सुरक्षा बनी रहती है, क्योंकि एक अथवा दो गतिविधियों के नुकसान से पूरी प्रक्रिया नष्ट नहीं होती। जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कम करने के लिए देसी नस्लों को बढ़ावा देना चाहिए।

जैव ईंधन वाली फसलों की खेती को बढ़ावा

हरितगृह प्रभाव को रोकने के लिए जैव ईंधन (बायो फ्यूल) वाली फसलें जैसे जेट्रोफा, मीठी ज्वार व मक्का इत्यादि के उपयोग की काफी संभावनाएं हैं। ये फसलें पहले तो वातावरण की कार्बनडाइऑक्साइड को संचित करके जैव ईंधन बनाने में उपयोग करती हैं। उसके बाद इन्हें अकेले या पेट्रोलियम के साथ मिलाकर जलाया जा सकता है। इसके अलावा विभिन्न ऊर्जा कार्यों के लिए उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार वातावरण में अतिरिक्त कार्बनडाइऑक्साइड का उत्सर्जन नहीं होगा। ■

मानव-पशु स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव

- उष्णता के कारण श्वास तथा हृदय संबंधी रोगों में वृद्धि।
- दस्त, हैजा, पेचिश, क्षयरोग, पीत ज्वर, मियादी बुखार जैसे रोगों की बारंबारता में वृद्धि।
- मच्छरों से फैलने वाले रोगों, जैसे मलेरिया, डेंगू, पीला बुखार और जापानी बुखार (मेनिन्जाइटिस) के प्रकोप में बढ़ोतरी।
- फाइलेरिया (फील-पांव) और चिकनगुनिया के प्रकोप में वृद्धि।

नाशीजीवों एवं रोगाणुओं की बढ़ती संख्या का पशुओं के स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव पड़ेगा। विदेशी नस्लों के पशुओं की कार्य क्षमता और उसकी गर्मी, सर्दी एवं पानी सहन करने की क्षमता कम होती है। इन सबके प्रभाव से इनकी प्रजनन क्षमता व उत्पादकता पर सीधा असर पड़ता है। रोग ज्यादा होते हैं, देसी दुधारू गायों से मीथेन का उत्सर्जन कम होता है। जानवरों के भोजन व उसके प्रकार में जो अंतर होता है, वह मीथेन के उत्सर्जन के लिए उत्तरदायी है।

फसल गहनता से अधिक कमाई

इन्दुबाला सेठी[1], रोहिताश्व सिंह[2], सुमित चतुर्वेदी[3], विजय कुमार सिंह[2] और **अजीत प्रताप सिंह[4]**

"देश की बढ़ती जनसंख्या का भरण-पोषण करना भविष्य के लिए एक चुनौती का रूप ले चुका है। आने वाले समय में खाद्यान्न, दलहन, फल, सब्जी, दूध, मांस और अंडा आदि की मांग बढ़ेगी। औसत जोत का आकार कम हो रहा है। असंतुलित परंपरागत कृषि पद्धतियों के कारण किसानों की आर्थिक दशा दयनीय होती जा रही है। देश में छोटे किसानों की संख्या लगभग 83 प्रतिशत है। भारत में धान-गेहूं फसल प्रणाली 10 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में फैली हुई है। गंगा के मैदानी क्षेत्रों में यह मुख्य फसल प्रणाली है। यह फसल प्रणाली मुख्यत : पंजाब, हरियाणा, बिहार, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश इत्यादि राज्यों में प्रमुख है और राष्ट्रीय खाद्यान्न उत्पादन में इनका 75 प्रतिशत योगदान है। देश में बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण किसान की जोत का आकार छोटा होता जा रहा है। यही कारण है छोटे किसान के लिए फसल गहनता बढ़ाना आज की जरूरत बन गई है।"

फसल गहनता से बढाएं आमदनी

उत्तराखंड के सिंचित तराई क्षेत्र के छोटे भूमिधारकों द्वारा अपनाई जाने वाली धान-गेहूं फसल प्रणाली को गहन और विविधीकरण करने के लिए गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर के फसल अनुसंधान केंद्र पर फसल गहनता और फसल स्थापना तकनीकियों का अध्ययन किया गया। 'धान-गेहूं फसल प्रणाली की उत्पादकता और अर्थशास्त्र पर प्रभाव' विषय पर वर्ष 2014-15 में शोध किया गया। इस परीक्षण में नौ उपचारों को लगाया गया। विभिन्न उपचारों में धान (सीधी बुआई)-आलू-लोबिया (दाना) प्रणाली उपचार सर्वोत्तम (30.91 टन/हैक्टर) पाया गया। इसके पश्चात अधिकतम उत्पादकता मक्का + लोबिया + ढैंचा-सब्जी मटर + तोरिया-मूंगफली + मेंथा (21.35 टन/हैक्टर)। दोनों फसल प्रणालियों की उत्पादकता धान-गेहूं प्रणाली की तुलना में काफी अधिक है। सकल मूल्य, शुद्ध लाभ और लाभ लागत अनुपात सब्जी मटर + तोरिया-आलू-लोबिया (दाना) (463153.3 रुपये, 367846.3 रुपये/हैक्टर

सारणी 1. उपचार विवरण

उपचार	खरीफ रबी और जायद
उपचार-1	धान (रोपाई)-गेहूं-जारी
उपचार-2	धान (रोपाई)-सब्जी मटर-मूंगफली
उपचार-3	धान (सीधी बुआई)-सब्जी मटर-मक्का (अनाज)
उपचार-4	धान (सीधी बुआई)-आलू-लोबिया (अनाज)
उपचार-5	धान (सीधी बुआई)-सब्जी मटर-मक्का (भुट्टा + चारा)
उपचार-6	धान (सीधी बुआई)-पीली सरसों-लोबिया
उपचार-7	धान (सीधी बुआई) (क्यारी) + ढैंचा (कूंड़)-(2 :1)-सब्जी मटर (क्यारी) + तोरिया (कूंड़)-(2 :1)-मक्का (क्यारी) (भुट्टा + चारा)+ मेंथा (कूंड़) 1 :1 (सिंचित कूंड़ उभरी क्यारी 45 सें.मी. ' 30 सें.मी.)
उपचार-8	सोयाबीन (क्यारी) + धान (सीधी बुआई) (कूंड़)-(2 :1)-गेहूं. मेंथा (3 : 1) (संकरी क्यारी 60 सें.मी. ' 30 सें.मी.)
उपचार-9	मक्का (क्यारी) (भुट्टा+चारा)+लोबिया (क्यारी)+ढैंचा (कूंड़)-2 :1 :2-सब्जी मटर+तोरिया-3 :1-मूंगफली + मेंथा-3 : 1 (चौड़ी क्यारी 105 सें.मी. ' 30 सें.मी.)

[1]सहायक प्राध्यापक, कृषि अनुसंधान केन्द्र, नौगावां-301025 (अलवर), [2]प्राध्यापक एवं [3]सहायक प्राध्यापक, सस्य विज्ञान विभाग, [4]कनिष्ठ अनुसंधान अधिकारी, मृदा विज्ञान विभाग, गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर

फसल विविधीकरण

प्रायोगिक विवरण

प्रारूप खण्ड रूप रेखा	:	यादृच्छिक
पुनरावृत्ति	:	03
उपचार	:	10
भूखंडों की संख्या	:	9 × 3 = 27
भूखंडों का आकार मी.^{2}	:	8.25×5.25
मृदा प्रकृति	:	दोमट
मृदा पी-एच	:	7.2
विद्युत चालकता साइमन/मी.	:	0.18 डेसी
मृदा जैव कार्बन	:	0.82
स्थूल घनत्व सें.मी.^{3}	:	1.43 ग्राम/

विभिन्न उपचारों में धान (सीधी बुआई)-आलू-लोबिया (दाना) प्रणाली उपचार सर्वोत्तम (30.91 टन/हैक्टर) पाया गया। इसके पश्चात अधिकतम उत्पादकता मक्का + लोबिया + ढैंचा-सब्जी मटर + तोरिया-मूंगफली + मेंथा (21.35 रुपये टन/हैक्टर)। दोनों फसल प्रणाली की उत्पादकता धान-गेहूं प्रणालियों की तुलना में काफी अधिक है।

और 3.86 क्रमश:) में अधिकतम प्राप्त हुआ। इसके पश्चात सकल मूल्य, शुद्ध लाभ और लाभ लागत अनुपात मक्का + लोबिया + ढैंचा-सब्जी मटर + तोरिया-मूंगफली + मेंथा (339116.7 रुपये, 262494.7 रुपये/ हैक्टर और 3.43, क्रमश:) फसल प्रणाली से प्राप्त हुआ। ये धान-गेहूं प्रणाली की तुलना

सारणी 2. परिणाम एवं व्याख्या

उपचार संख्या	खेती की लागत रुपये/ हैक्टर	सकल मूल्य रुपये/ हैक्टर	शुद्ध लाभ रुपये/ हैक्टर	लाभ लागत अनुपात	प्रणाली लाभप्रदता रुपये/हैक्टर/ दिन	फसल लाभप्रदता रुपये/हैक्टर/ दिन
उपचार-1	50100	138266.7	88166.67	1.76	241.55	334.0
उपचार-2	92000	280601.7	188601.7	2.05	516.72	650.4
उपचार-3	66276	221096.7	172696.7	2.61	473.14	575.7
उपचार-4	95307	463153.3	367846.3	3.86	1007.80	1153.1
उपचार-5	69958	283193.3	213235.3	3.05	584.21	720.4
उपचार-6	63026	267560	204534	3.25	560.37	629.3
उपचार-7	75953	309959	234006	3.08	641.11	672.4
उपचार-8	56946	206243.3	149297.3	2.62	409.03	439.1
उपचार-9	76622	339116.7	262494.7	3.43	719.16	790.6
क्रांतिक अंतर (प्रा=0.05)		11993.69	11991.84	0.17	32.85	38.51

फसल गहनता और फसल स्थापना तकनीक का फसल प्रणाली की उत्पादन दक्षता (कि.ग्रा. धान की तुल्यांक उपज/हैक्टर/दिनों) पर प्रभाव

में अधिक उत्पादक और दक्ष (219.65 प्रतिशत) पाये गए। अत: विविधीकरण और भूमि विन्यास बदलाव से न केवल अधिक उत्पादकता और लाभ बढ़ता है बल्कि पानी और ऊर्जा की भी बचत होती है।

भोजन की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए धान-गेहूं फसल प्रणाली उत्पादकता में वृद्धि करने की जरूरत है। कृषि उत्पादकता में बढ़ोतरी और संसाधन संरक्षण तकनीकी विकास, नई फसल स्थापना तकनीकी और नई फसलों का विविधीकरण इत्यादि तरीकों को अपनाने से हो सकती है। अत: फसल उत्पादकता, फसल लाभ, मृदा की उर्वरता और उपयोग दक्षता (आदान) में वृद्धि करने के लिए धान-गेहूं प्रणाली में विविधीकरण और भूमि विन्यास की आवश्यकता है। ■

सरसों व तोरिया से लें अधिक लाभ

ए.के. सिंह, जय सिंह[1], सिद्धार्थ नायक और **डी.पी. शर्मा**
कृषि विज्ञान केन्द्र, ज.ने.कृ.वि.वि., जबलपुर (मध्य प्रदेश)

" तिलहनी फसलों के उत्पादन में भारत, विश्व में अमेरिका, चीन व ब्राजील के बाद चौथा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। देश में विश्व के कुल तिलहन क्षेत्रफल के 19 प्रतिशत क्षेत्र में तिलहनी फसलों की खेती की जाती है। विश्व के कुल तिलहन उत्पादन में 2.7 प्रतिशत का भारत का योगदान है। विश्व के कुल सरसों उत्पादन में भारत का 11 प्रतिशत का हिस्सा है। हम चौथे सबसे बड़े सरसों के उत्पादक देश हैं। देश में उत्पादित खाद्य तिलहनी फसलों में सोयाबीन के बाद सरसों का द्वितीय स्थान है। कुल तिलहन उत्पादन में सरसों का 20-22 प्रतिशत हिस्सा है। रबी तिलहनी फसलों में सरसों व तोरिया की खेती भारत में सबसे अधिक होती है। देश के उत्तरी एवं पश्चिमी भाग में सरसों की खेती प्रमुख रूप से की जाती है। राजस्थान व उत्तर प्रदेश प्रमुख सरसों उत्पादक राज्य हैं। अन्य सरसों उत्पादक राज्यों में मध्य प्रदेश, हरियाणा, गुजरात, पश्चिम बंगाल व असोम प्रमुख हैं। सरसों वानस्पतिक तेलों में सबसे कम संतृप्त वसीय अम्लों वाली तथा खाद्य तेलों में प्रमुख स्थान रखने वाली फसल है। "

सरसों उत्पादन में अन्य फसलों की अपेक्षा कम लागत तथा अधिक आर्थिक लाभ के कारण इसके क्षेत्रफल में लगातार वृद्धि हो रही है। देश में सरसों की खेती का प्रसार एकल एवं मिश्रित क्षेत्रफल के रूप में किया जा रहा है। सरसों-राई समूह में सात प्रमुख फसलें-सरसों और तोरिया, गोभी सरसों, पीली सरसों, भूरी सरसों, कसराई और तारामीर आती हैं। इनमें सरसों व तोरिया की खेती देश में प्रमुख रूप से की जाती है।

भूमि की तैयारी

इन फसलों के लिए दोमट या बलुई दोमट भूमि, जिसका जल निकास अच्छा हो, अधिक उपयुक्त होती है। बीज के अच्छे अंकुरण के लिए वर्षा के बाद हल या कल्टीवेटर से दो-तीन बार या एक जुताई कल्टीवेटर से और एक जुताई रोटावेटर से करें। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा अवश्य लगायें। सिंचित अवस्था के लिए पलेवा के उपरांत कल्टीवेटर से दो जुताई तथा दो जुताई हैरो से करें तथा प्रत्येक जुताई के बाद पाटा अवश्य लगाएं।

बुआई का समय एवं तरीका

सरसों की बुआई के लिए उपयुक्त व अनुकूल समय 26^0-28^0 सेल्सियस होता है। भरपूर फसल व अधिक लाभ के लिए बुआई अक्टूबर के दूसरे सप्ताह में कर देनी चाहिए। सरसों की बुआई कतारों में करनी चाहिए। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 सें.मी. रखनी चाहिए। बीज की बुआई भुरभुरी मृदा में करनी चाहिए। सिंचित अवस्था में बीज को मृदा में 2.5 से 3.0 सें.मी. गहराई में बोना चाहिए। असिंचित क्षेत्रों में बीज को मृदा के अंदर नमी वाले क्षेत्रों में बोना चाहिए एवं कूंड़ों को खुला छोड़ देना चाहिए। बुआई पूर्वी-पश्चिमी दिशाओं में करनी चाहिए। इससे सभी पौधों को सूर्य का प्रकाश पर्याप्त मात्रा में एवं लंबी अवधि तक मिलता रहेगा। बीज एवं उर्वरक को एक साथ मिलाकर बुआई न करें अपितु इसके लिए बीज-सह-उर्वरक सीडड्रिल का प्रयोग करें। अच्छे परिणाम के लिए उर्वरक को 7-10 सें.मी. की गहराई एवं बीज को 3-4 सें.मी. की गहराई पर बोना चाहिए।

बीजदर एवं बीजोपचार

सरसों का 5 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर की दर से पर्याप्त होता है। बीज को बुआई से पूर्व कार्बोन्डाजिम 2 ग्राम अथवा स्पर्श एवं आंतरिक मिश्रित फफूंदनाशी की 2 ग्राम मात्रा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित कर बुआई करें।

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, सिंगरौली (मध्य प्रदेश)

समन्वित कीट प्रबंधन

- ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करें, जिससे सुषुप्तावस्था में छिपे कीट धूप के सीधे संपर्क में आने से नष्ट हो जाएं।
- पूर्व फसल के अवशेषों को इकट्ठा कर उनका निबटान कर दें।
- माहूं की निगरानी के लिए पीला चिपकने वाला प्रपंच (येलो स्टिकी ट्रैप) लगाएं।
- माहूं के प्रबंधन के लिए अगेती बुआई करें।
- सिंचित फसल में बुआई के 4 सप्ताह बाद चितकबरा कीट का संक्रमण शुरू हो जाता है। इसके प्रबंधन के लिए क्विनालफॉस 25 ई.सी. की 625 मि.ली. मात्रा अथवा ट्राइजोफॉस 40 ई.सी. 1 लीटर अथवा प्रोफेनोफॉस 50 ई.सी. 1.5 से 2.0 लीटर मात्रा प्रति हैक्टर की दर से 500 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।
- इल्लियों को इकट्ठा कर नष्ट कर दें।
- सरसों में वानस्पतिक अवस्था में आरा मक्खी के प्रबंधन के लिए क्विनालफॉस 25 ई.सी. की 150-200 मि.ली. मात्रा अथवा ट्राइजोफॉस 35 प्रतिशत, डेल्ट्रामेथ्रिन 1 प्रतिशत की 1.0 लीटर मात्रा का 500 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।
- माहूं से संक्रमित टहनियों को तोड़कर नष्ट कर दें।
- जब माहूं की संख्या आर्थिक क्षति स्तर (25 प्रतिशत संक्रमित पौधे अथवा 130 कीट प्रति पौधा) के ऊपर पहुंच जाए तो इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. की 125 मि.ली. अथवा डाइमेथिएट 30 ई.सी. 1.0 लीटर मात्रा का प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।
- शुरुआती अवस्था में रस चूसने वाले कीटों के प्रबंधन के लिए निम्बोली सत् का 5 प्रतिशत घोल का छिड़काव लाभप्रद होता है।

अल्टरनेरिया झुलसा या अंगमारी रोग

जल प्रबंधन

सरसों की सिंचित फसल के लिए दो सिंचाई पर्याप्त होती है। पलेवा के बाद बोई गई फसल में बुआई के 40-45 दिनों बाद तथा बिना पलेवा के बुआई की गई फसल में पहली सिंचाई बुआई के 35-40 दिनों बाद करें। सरसों की फसल में फलियों में बीज बनने की अवस्था अति संवेदनशील होती है। अत: शीत ऋतु में वर्षा न होने की दशा में बुआई के 75-80 दिनों बाद दूसरी सिंचाई करें अन्यथा फलियों में दानों का भराव ठीक से नहीं हो पाता है। इस अवस्था पर सिंचाई हल्की करनी चाहिए। ज्यादा सिंचाई करने से पौधों के गिरने की आशंका बनी रहती है। किसान ध्यान रखें कि तेज हवा चलते समय सिंचाई न करें।

खरपतवार प्रबंधन

फसल बोने के लगभग 20-25 दिनों बाद पौधों में एक से दो पत्तियां आने के बाद निराई-गुड़ाई करें। साथ ही घने पौधे का विरलन इस प्रकार से करें कि पौधे से पौधे की दूरी 10 सें.मी. हो जाए। भरपूर उपज प्राप्त करने के लिए फसल को खरपतवार से मुक्त रखना जरुरी है। यदि फसल की बुआई के 15 से 40 दिनों तक खरपतवार मुक्त रखा जाए तो खरपतवारों द्वारा होने वाली उपज क्षति को 15-30 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है। रासायनिक विधि से खरपतवार प्रबंधन के लिए बुआई से पहले फ्लूक्लोरोलिन के 1.0 लीटर सक्रिय तत्व को 600 लीटर पानी में घोलकर बुआई पूर्व मृदा में छिड़कें। फसल की बुआई के बाद एवं अंकुरण के पहले

पोषक तत्व प्रबंधन

सरसों में अधिक पैदावार के लिए नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटाश के अतिरिक्त अन्य गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। मृदा की जांच के बाद ही उर्वरकों की मात्रा सुनिश्चित करें। मृदा की उर्वराशक्ति में संतुलन बनाये रखने के लिए सरसों की फसल में गोबर की खाद/वर्मीकम्पोस्ट और अन्य जैविक खादों का प्रयोग करना चाहिए है। गोबर की खाद/वर्मीकम्पोस्ट को बुआई के 15-20 दिनों पहले सिंचित अवस्था में 80-100 क्विंटल तथा वर्षा आधारित क्षेत्रों में 40-50 क्विंटल प्रति हैक्टर की दर से खेत तैयार करते समय अच्छी तरह से मृदा में मिला देना चाहिए। फसल की अच्छी पैदावार के लिए सिंचित अवस्था में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश को क्रमश: 80: 40: 20 एवं असिंचित दशा में 40: 20: 10 प्रति हैक्टर की दर से मुख्य तत्व के रूप में दें। सिंचित क्षेत्रों में नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुआई पूर्व अच्छी तरह से मृदा में मिला दें। नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा पहली सिंचाई के समय खेत में डालें। वर्षा आधारित क्षेत्रों में उर्वरकों की पूरी मात्रा को बुआई के पहले ही खेत में डाल देना चाहिए।

तिलहनी फसलों द्वारा गंधक का अवशोषण फॉस्फोरस से भी अधिक होता है। अत: मृदा में सल्फर के संतुलन को बनाये रखने, गुणवत्तायुक्त व अधिक पैदावार लेने के लिए गंधक की कमी दिखाई देते ही 250 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से जिप्सम का प्रयोग करना लाभप्रद होता है। फसल की बुआई के पूर्व 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट का प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग किया जा सकता है। इससे जिंक व गंधक दोनों की पूर्ति की जा सकती है।

सरसों का माहूं कीट

पेन्डीमिथलीन के 1.0 लीटर सक्रिय तत्व को 600 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हैक्टर की दर से फ्लैट-फैन नोजल से छिड़काव करें। छिड़काव के समय खेत में उचित नमी का होना आवश्यक है।

उपज

उन्नत सस्य क्रियाएं व पौध संरक्षण अपनाने पर 15-18 क्विंटल सरसों प्रति हैक्टर प्राप्त होती है। इस प्रकार एक एकड़ क्षेत्र में 7,500 रुपये लागत आने पर 16,000-20,000 रुपये की शुद्ध आय प्राप्त होती है।

सरसों के प्रमुख रोग

झुलसा या अंगमारी

यह रोग अल्टरनेरिया ब्रेसिसिकोला या अल्टरनेरिया ब्रेसिकी या अल्टरनेरिया रेफेनाई

सारणी : सरसों की उन्नत प्रजातियां

भारतीय सरसों की प्रजातियां	उपज क्षमता (क्विं/हैक्टर)	पकने की अवधि (दिन)	तेल प्रतिशत	विशेषताएं
माया	25-30	125-135	39-40	श्वेत गेरुआ रोग के प्रतिरोधी तथा सिंचित अवस्था के लिए उपयुक्त
स्वर्ण ज्योति	13-14	-	39-43	सिंचित अवस्था में देर से बुआई तथा पाला वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त
वसुंधरा	20-21	130-135	38-40	सिंचित अवस्था में समय से बुआई के लिए उपयुक्त
सी.एस.-54	16-20	109-147	39-41	लवणीय भूमि के लिए उपयुक्त
आशीर्वाद	14-24	125-135	31-41	सिंचित दशा में देर से बुआई के लिए उपयुक्त
जवाहर सरसों-1	15-20	125-126	42	श्वेत गेरुआ रोग के लिए प्रतिरोधी
जवाहर सरसों-2	16-25	135-138	38-41	श्वेत गेरुआ रोग के लिए प्रतिरोधी
जवाहर सरसों-3	15-25	130-132	40	अल्टरनेरिया झुलसा के प्रति सहनशील
पूसा महक	6-11	अगेती	39-44	वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त
क्रांति	15-21	125-135	40-42	बढ़ते तापमान के लिए सहनशील
वरुणा	15-20	125-140	43	अल्टरनेरिया ब्लाइट एवं माहूं के प्रकोप के लिए सहनशील
पूसा बोल्ड	15-18	125-130	45	बड़े दाने वाली किस्म
रोहिणी	22-28	125-130	45	
पूसा जय किसान	16-20	113-120	40	सिंचित क्षेत्र के लिए उपयुक्त
पूसा अग्रणी	17-18	90-100	39-40	बढ़ते तापमान के प्रति सहिष्णु
पूसा तारक	18-20	120-125	39-42	बड़े दाने वाली तथा बढ़ते तापमान के लिए सहनशील
पूसा जगन्नाथ	24-25	125-130	40	सिंचित अवस्था में सफेद गेरुआ एवं अल्टरनेरिया विर्वणता रोगों के प्रति सहिष्णु
एन.आर.सी.एच.बी.-506	32	133	39-43	संकर प्रजाति, उच्च अनुकूलन क्षमतायुक्त
एन.आर.सी.एच.बी.-101	13-15	120	35-42	सिंचित अवस्था में देर से बुआई के लिए उपयुक्त संकर प्रजाति
डी.एम.एच.-1	17-23	146	38-42	उच्च फलीधारण क्षमता वाली संकर प्रजाति तथा श्वेत गेरुआ के लिए रोधी
आर.एन.जी.-73	20	132	40	सिंचित अवस्था एवं पाला के प्रति सहनशील
जवाहर सरसों-99	16-25	125-135	39-41	बड़े दाने वाली, रोग एवं कीटों के प्रति सहनशील
तोरिया की उन्नत प्रजातियां				
पार्वती	13-14	75	42	वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त
अनुराधा	14-15	75	44	वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त
बी.एल. तोरिया-3	7-12	145	39-41	ठंड के प्रति सहनशील
उत्तरा	10	-	42	श्वेत गेरुआ, चूर्णिल आसिता तथा मृदुरोमिल आसिता के लिए मध्यम प्रतिरोधी
जवाहर तोरिया-1	17	85-90	39-42	
गोभी-सरसों की उन्नत प्रजातियां				
टेरी उत्तम जवाहर	16-27	130-135	43-45	यूरिक एसिड 2 प्रतिशत से कम तथा निम्न ग्लूकोसाइनोलेट की मात्रा

नामक फफूंद द्वारा होता है। इस रोग के कारण उपज में काफी नुकसान होता है। इस रोग के प्रकोप से बीज सिकुड़कर बदरंग हो जाता है और गुणवत्ता में भी कमी आती है। कभी-कभी फसल के अत्यधिक रोगग्रसित होने पर 90 प्रतिशत तक उत्पादन में कमी देखी गई है।

रोग लक्षण

बुआई के 3-4 सप्ताह बाद पत्तियों पर भूरे काले पिन के सिरे के आकार जितने धब्बे बनते हैं। अधिक आर्द्रता होने पर ये भूरे रंग के गोल धब्बे चारों ओर से गुलाबी या काले किनारे वाले धब्बों में बदल जाते हैं। धब्बों के आसपास के स्थान का क्लोरोफिल नष्ट हो जाता है। अधिक रोगग्रसित होने पर पत्तियां झड़ जाती हैं। रोग की उग्र अवस्था में ये धब्बे तने, फली एवं बीज पर भी पाये जाते हैं, जिससे बीज दाना छोटा व सिकुड़ा हुआ मिलता है।

रोग की रोकथाम

खेत में पड़े रोगग्रस्त पौधों के अवशेषों को एकत्र कर जला दें। स्वस्थ बीजों को ही बोने के लिए प्रयोग करें।

रोगग्रस्त फसल

रोग प्रतिरोधी किस्मों को ही बोयें। इस बीजजनित फफूंद से बचाव के लिए बीज 50^0 सेल्सियस पर गर्म पानी में 30 मिनट तक उपचारित करके ही बोएं। अगेती बुआई करने पर रोग की आशंका बहुत कम हो जाती है। जब यह रोग दिखाई दे तो 0.25 प्रतिशत मैंकोजेब के घोल का छिड़काव करें। 10-15 दिनों के अंतराल पर भी 2-3 छिड़काव करें।

पौध संरक्षण

सरसों के प्रमुख कीट

माहूं, चितकबरा कीट, आरा मक्खी तथा बालदार गिडार सरसों के प्रमुख कीट हैं। इनके द्वारा सरसों की फसल में 10-50 प्रतिशत तक उपज हानि होती है।

माहूं

यह सरसों का सबसे हानिकारक कीट है। यह बहुत छोटा हरे, पीले, भूरे या काले रंग का होता है। माहूं तेजी से अलैंगिक जनन द्वारा वृद्धि कर लाखों की संख्या में वातावरण में फैल जाते हैं। इस कीट के शिशु और वयस्क सरसों कुल के पौधों को अपने मुखांगों द्वारा रस चूसकर हानि पहुंचाते हैं। इस कीट का प्रकोप दिसंबर के मध्य से शुरू होता है। माहूं फूलों और कलियों का रस चूसते हैं, जिससे पौधों का विकास रुक जाता है। प्रभावित पौधों पर फलियां बहुत कम बनती हैं और फलियों में दाने भी नहीं बनते जिससे सरसों की पैदावार एवं तेल की मात्रा में काफी गिरावट आ जाती है। बदले मौसम में इस कीट की संख्या में तेजी से वृद्धि होती है।

चितकबरा कीट

यह काले रंग का भृंग होता है, जिसकी पीठ पर पीले धब्बे होते हैं। जब सरसों की फसल 3-4 पत्तियों की होती है तो इस कीट के शिशु एवं वयस्क पौधों की पत्तियों का रस चूसकर हानि पहुंचाते हैं। इससे पत्तियों पर सफेद धब्बे बन जाते हैं और अंततः पौधा मर जाता है। कभी-कभी इस कीट के कारण पूरी फसल नष्ट हो जाती है।

आरा मक्खी

इस कीट की इल्लियां फसल की प्रारंभिक अवस्था में पत्तियों को खाकर अक्टूबर से दिसंबर तक हानि पहुंचाती हैं। इसका सिर काला एवं पीठ पर काली धारियां होती हैं।

बालदार सूंडी

इस कीट की सूंडियां ही फसल को नुकसान पहुंचाती हैं। यह पत्तियों को अत्यधिक मात्रा में खाती हैं, इनके शरीर का रंग पीला होता है।

सफेद फफोला अथवा किट्ट

यह 'एल्बूगो कैनाडिडा' नामक फफूंद से होने वाला मृदाजनित रोग है। इस रोग से 15 से 90 प्रतिशत तक उपज में हानि हो जाती है।

रोग लक्षण

इस रोग के लक्षण जड़ों को छोड़कर पौधों के सभी भागों पर दिखाई देते हैं। पत्तियों की निचली सतह पर उभरे हुए सफेद धब्बे रोग के मुख्य लक्षण हैं। आरंभ में धब्बे काफी छोटे होते हैं, जो बाद में आपस में मिलकर बड़े बन जाते हैं। उभरे हुए सफेद धब्बे जब फूटते हैं तो सफेद रंग की धूल के समान फफूंद बाहर निकलती है। रोग की उग्रावस्था में पत्तियों की ऊपरी तथा निचली दोनों सतह पर श्वेत धब्बे दिखाई पड़ते हैं। पत्तियां छोटी-मोटी एवं टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती हैं व पौधा बौना रह जाता है। कभी-कभी तने के कुछ भाग फूल जाते हैं। इस रोग के कारण तने एवं पुष्पों में बाह्य दल (कैलिक्स), दलपुंज (करौला), पुमंग (एंड्रोसियम) और जायांग (गायनोसियम) फूलकर मोटे हरे पत्ते जैसे हो जाते हैं, जिससे पुष्प बंध्य हो जाता है। इस रोग का प्रसार पौधों के अवशेष से संक्रमित मृदा एवं बीज द्वारा होता है। आर्द्र अवस्था में रोग का प्रसार अधिक होता है।

रोग की रोकथाम

खेत में पड़े पौधों के रोगग्रस्त अवशेषों को एकत्र कर जला दें। स्वस्थ बीजों को ही बोने के लिए प्रयोग करें। रोग प्रतिरोधी किस्मों को ही बोयें तथा एप्रान की 5 ग्राम मात्रा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीज को उपचारित करके बोयें। जब यह रोग दिखाई दे तो 0.25 प्रतिशत मैंकोजेब के घोल का छिड़काव करना लाभप्रद होता है। 10-15 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करें। ■

IFFCO

पूर्णतः सहकारी स्वामित्व
Wholly owned by Cooperatives

50 1967 2017
स्वर्ण जयंती
Golden Jubilee

इफको के स्वर्णिम 50 वर्ष

कृषि, सहकारिता एवं ग्रामीण विकास को समर्पित

नीम लेपित यूरिया | एन पी के | डी ए पी | एन पी | बॉयो फर्टिलाइजर

वॉटर सोल्यूबल फर्टिलाइजर | माईक्रो न्यूट्रीएन्ट फर्टिलाइजर

Follow us :

YouTube IFFCO live
iffcolive.com

IFFCO
पूर्णतः सहकारी स्वामित्व

INDIAN FARMERS FERTILISER COOPERATIVE LIMITED

IFFCO Sadan, C-1 District Centre, Saket Place, New Delhi - 110017, INDIA
Phones : 91-11-26510001, 91-11-42592626. Website : www.iffco.coop

धान-गेहूं फसल प्रणाली की समस्याएं एवं समाधान

गोपाल लाल चौधरी[1] और **कैलाश प्रजापत**[2]

“धान–गेहूं फसल प्रणाली भारत की सबसे महत्वपूर्ण फसल प्रणाली है एवं सिंधु–गंगा मैदानी क्षेत्रों में इसे लगभग 120 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में अपनाया जा रहा है। लगातार इस प्रणाली को अपनाने से अनेक प्रकार की समस्याएं सामने आ रही हैं, जिससे इसके टिकाऊपन को खतरा उत्पन्न हो गया है। मृदा से पोषक तत्वों के अत्याधिक दोहन से मृदा में बहुपोषक तत्वों की कमी और पडलिंग क्रिया द्वारा मृदा संरचना को नुकसान होता है। मृदा स्वास्थ्य में गिरावट, सिंचाई के लिए पानी के अत्याधिक दोहन से भूजल स्तर में निरंतर गिरावट, उर्वरकों एवं रसायनों के अत्यधिक उपयोग से भूजल प्रदूषण, रोगों व कीटों का प्रकोप एवं खरपतवारों की समस्या बढ़ जाती है। फसल अवशेषों को जलाने से पर्यावरण प्रदूषण एवं ग्रीनहाउस गैसों का उर्त्सजन आदि इस प्रणाली की मुख्य समस्याएं हैं। फसल विविधीकरण, कार्बनिक खादों एवं हरी खाद का उपयोग, संतुलित उर्वरक प्रबंधन और धान बुआई की नवीन विधियों को अपनाकर इन मुसीबतों से छुटकारा पा सकते हैं। फसल अवशेषों के उचित प्रबंधन, उचित जल प्रबंधन, समन्वित खरपतवार एवं पादप संरक्षण तथा संसाधन संरक्षण तकनीकों को अपनाकर इन समस्याओं का समाधान किया जा सकता है एवं इस प्रणाली में टिकाऊपन लाया जा सकता है।”

सिंधु–गंगा मैदानी क्षेत्र में आने वाले राज्यों–उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, बिहार, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश तथा अन्य उत्तरी–पश्चिमी राज्यों में धान–गेहूं फसल प्रणाली के अंतर्गत लगभग 120 लाख हैक्टर क्षेत्रफल है। पिछले कुछ वर्षों से इस फसल चक्र में अत्यधिक वृद्धि होने के बावजूद इन फसलों की उत्पादकता में स्थिरता आ चुकी है। भविष्य में इन फसलों की उत्पादकता कम होने की आशंका के मद्देनजर इस फसल चक्र के टिकाऊपन पर प्रश्नचिह्न लगे हैं। धान–गेहूं फसल प्रणाली में मुख्य समस्याएं और उनका समाधान निम्न प्रकार हैं:

[1]सस्य विज्ञान विभाग, भोला पासवान शास्त्री कृषि महाविद्यालय, पूर्णिया–854302, (बिहार कृषि विश्वविद्यालय, साबौर, भागलपुर) बिहार; [2]भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)

प्रमुख समस्याएं

मृदा से पोषक तत्वों का अत्याधिक दोहन

धान–गेहूं फसल प्रणाली सघन फसल प्रणाली के अंतर्गत आती है। इस फसल प्रणाली में किसान लगातार अधिक उपजशील एवं संकर किस्मों की बुआई करते हैं। इन किस्मों को पोषक तत्वों की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है, जबकि किसान उर्वरकों का असंतुलित उपयोग कर रहे हैं। इस कारण मृदा में काफी

गेहूं की मेड़ों पर बुआई

कम मात्रा में बाहर से पोषक तत्वों की पूर्ति होती है। फसल द्वारा काफी अधिक मात्रा में पोषक तत्व मृदा से बाहर निकाल लिए जाते हैं। पोषक तत्वों के अत्यधिक दोहन से मृदा की उर्वरता एवं उत्पादकता में दिन-प्रतिदिन गिरावट आ रही है।

मृदा में बहुपोषक तत्वों की कमी

हरित क्रांति से पहले केवल मुख्य पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश) को ही उर्वरकों के माध्यम से फसलों को देना आवश्यक था। उस समय मृदा में अन्य आवश्यक पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में मौजूद थे। समय के साथ मृदा में उपलब्ध आवश्यक पोषक तत्वों की कमी होती गई। इसका मुख्य कारण था असंतुलित पोषक तत्व प्रबंधन। धान-गेहूं फसल प्रणाली की दोनों फसलें धान्य कुल की फसलें हैं एवं इनकी पोषक तत्व आवश्यकता भी अधिक है। असंतुलित पोषक तत्व प्रबंधन के कारण धान-गेहूं फसल प्रणाली के क्षेत्रों की मृदा में बहुपोषक तत्वों की कमी उत्पन्न हो गई है। इस फसल प्रणाली के क्षेत्रों में मुख्यत: नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, सल्फर, लोहा, जस्ता, बोरॉन एवं मैंगनीज की काफी कमी हो गई है।

मृदा संरचना को नुकसान

हमारे देश में धान की फसल लगाने के लिए किसान पडलिंग (खड़े पानी में खेत की जुताई) द्वारा खेत की तैयारी करते हैं। पडलिंग करने का मुख्य उद्देश्य मृदा में पानी के रिसाव को कम करना, पौध की रोपाई में आसानी एवं खरपतवारों को नष्ट करना होता है। पडलिंग की प्रक्रिया करने से मृदा की संरचना को नुकसान होता है, जो कि ऊपरी भूमि की फसलों जैसे-गेहूं, मक्का, दलहनी एवं तिलहनी फसलों आदि के लिए नुकसानदायक होती है। धान के खेत में लगातार पडलिंग करने से मृदा में 15-20 सें.मी. गहराई पर एक कठोर परत बन जाती है एवं यह परत गेहूं की फसल की जड़ों के विकास एवं वृद्धि में अवरोधक का कार्य करती है।

मृदा स्वास्थ्य में गिरावट

लगातार धान-गेहूं फसल प्रणाली अपनाने वाले क्षेत्रों में सघन कृषि क्रियाओं के कारण मृदा के स्वास्थ्य में लगातार गिरावट आ रही है। मृदा स्वास्थ्य में गिरावट के मुख्य कारण धान में पडलिंग क्रिया, असंतुलित उर्वरक प्रबंधन, अनुचित फसल अवशेष प्रबंधन, कार्बनिक खादों का प्रयोग न करना, अत्यधिक मात्रा में कीटनाशकों का प्रयोग

शून्य जुताई विधि से फसल की बुआई

धान-गेहूं फसल प्रणाली का लगभग आधा क्षेत्रफल उत्तरी-पूर्वी मैदानी क्षेत्र के अंतर्गत आता है। इस क्षेत्र में उत्तरी-पश्चिमी मैदानी क्षेत्र की अपेक्षा उत्पादन में लगभग एक टन प्रति हैक्टर का अंतर है। इन दोनों क्षेत्रों के मध्य उत्पादन में अंतर का मुख्य कारण धान की देरी से कटाई है, जो रबी में गेहूं की देरी से बुआई के लिए उत्तरदायी है। देरी से बुआई के कारण गेहूं की फसल को अंकुरण, वृद्धि एवं दाना बनते समय अनुपयुक्त तापमान का सामना करना पड़ता है, जिससे फसल की उत्पादकता कम हो जाती है। इस समस्या से बचने के लिए शून्य जुताई तकनीक का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। इस तकनीक में एक विशेष प्रकार की मशीन जिसे 'जीरो टिलेज मशीन' के नाम से जाना जाता है, के द्वारा धान के बाद बिना जुताई किए गेहूं की बुआई की जाती है। जीरो टिलेज मशीन के द्वारा खेत में उर्वरक एवं बीज को एक साथ मृदा में डाला जा सकता है। इस मशीन में आगे के बॉक्स में उर्वरक तथा पीछे के बॉक्स में बीज को भरा जाता है। इस मशीन में लगा हल केवल एक पतला सा कूंड बनाता है एवं सबसे नीचे में उर्वरक गिरता है एवं उर्वरक से 5 सें.मी. ऊपर बीज गिरता है। इसके अलावा बाकी की मृदा बिना जुताई के रहती है। देरी से बुआई की अवस्था में इस तकनीक को अपनाकर फसल की बुआई 7 से 10 दिनों पहले कर सकते हैं। इस प्रकार इस तकनीक के उपयोग से देरी से बोई गई फसल में होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है। इस तकनीक को अपनाने से बुआई पर होने वाले खर्च में 2500 से 3000 रुपये प्रति हैक्टर तक की कमी लायी जा सकती है। इसके साथ ही फसल उत्पादकता में 5 से 10 प्रतिशत तक बढ़ोतरी की जा सकती है।

ग्लोबल वार्मिंग

वर्तमान समय में ग्लोबल वार्मिंग कृषि क्षेत्र के लिए एक नई एवं शक्तिशाली चुनौती बनकर उभरा है। ग्लोबल वार्मिंग ही जलवायु परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है। धान-गेहूं फसल प्रणाली का जलवायु परिवर्तन में बहुत बड़ा योगदान है। किसान धान के पुआल को खेत में ही जला देते हैं। पुआल को जलाने पर काफी मात्रा में जहरीली गैसें वातावरण में निकलती हैं। पुआल को जलाने पर निकलने वाली गैसों में 70 प्रतिशत कार्बन डाईऑक्साइड, 7 प्रतिशत कार्बनमोनोऑक्साइड, 0.66 प्रतिशत मीथेन एवं 2.09 प्रतिशत नाइट्रसऑक्साइड गैस होती हैं। उपरोक्त सभी गैसें जलवायु परिवर्तन के लिए उत्तरदायी होती हैं। इसके अलावा पडलिंग द्वारा लगाये गए धान के खेत में से बहुत अधिक मात्रा में मीथेन गैस निकलती है। उपलब्ध जानकारी के अनुसार भारत के कुल मीथेन उत्सर्जन का लगभग 24 प्रतिशत धान के खेत से होता है। धान एवं गेहूं की फसल में उपयोग होने वाले नाइट्रोजन उर्वरकों से काफी मात्रा में नाइट्रस ऑक्साइड गैस भी उर्त्सजित होती है। इस प्रकार धान-गेहूं फसल प्रणाली का जलवायु परिवर्तन में बहुत बड़ा योगदान है।

फसल अवशेष प्रबंधन की समस्या

धान–गेहूं फसल प्रणाली वाले क्षेत्रों में फसल अवशेषों का खेत में प्रबंधन एक बहुत बड़ा मुद्दा है। गेहूं का भूसा तो जानवरों को खिलाने के काम में ले लिया जाता है, परंतु सिलिका की अधिक मात्रा के कारण धान का भूसा सामान्यत: जानवरों को खिलाने के काम में नहीं लिया जाता है। धान के भूसे में कार्बन:नाइट्रोजन का अनुपात अधिक होता है। लगातार खेत में डालने के कारण मृदा में उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा में कमी आती है। इन कारणों से किसान गेहूं की समय पर बुआई करने के लिए धान के भूसे को खेत में ही जला देते हैं। फसल अवशेषों को जलाने से मृदा के स्वास्थ्य, उर्वरता एवं उत्पादकता में गिरावट आती है।

आदि है। इस फसल प्रणाली वाले क्षेत्रों की मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में गिरावट हुई है। मृदा में लाभदायक जीवों की संख्या में भी काफी कमी आई है। हम सभी जानते हैं कि कार्बनिक पदार्थ एवं लाभदायक जीव मृदा स्वास्थ्य का एक महत्वपूर्ण अंग है। अगर मृदा में इनका संतुलन बिगड़ता है तो मृदा के स्वास्थ्य में गिरावट आती है एवं मृदा की उत्पादकता कम हो जाती है।

भूजल प्रदूषण

धान–गेहूं फसल प्रणाली में उर्वरकों एवं कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से भूजल की गुणवत्ता प्रदूषित हो गई है। इस खराब गुणवत्ता के पानी को सिंचाई एवं पशुओं के लिए उपयोग में लेने से पशुओं में रोगों का प्रकोप हो रहा है। फसलों से प्राप्त दानों की गुणवत्ता खराब हो रही है, जिसका सीधा प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर हो रहा है। धान–गेहूं फसल प्रणाली में नाइट्रोजन उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग हो रहा है एवं नाइट्रोजन की उपयोग दक्षता केवल 40 प्रतिशत है। बाकी नाइट्रोजन पानी के साथ में भूजल में मिल जाता है एवं पानी में नाइट्रेट की अधिकता हो रही है। इस प्रकार की समस्या हल्की मृदा वाले क्षेत्रों में बहुत अधिक पाई जाती है। नाइट्रेट की अधिकता वाले पानी के उपयोग से मनुष्य में ब्लू बेबी सिंड्रोम नामक रोग होने का खतरा रहता है। धान एवं गेहूं में उर्वरकों एवं कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग के कारण पंजाब के दक्षिण–पश्चिम जिलों में भूजल पीने के साथ–साथ सिंचाई के लिए भी अनुपयुक्त हो गया है। पंजाब के इन जिलों में प्रदूषित पानी के उपयोग से यहां कैंसर का रोग बहुत फैल रहा है।

रोगों व कीटों का प्रकोप

धान एवं गेहूं की फसलों में पहले रोगों एवं कीटों का प्रकोप बहुत कम होता था। परंतु एक ही भूमि पर लगातार धान–गेहूं फसल प्रणाली को अपनाने से इन दोनों फसलों में रोगों एवं कीटों का प्रकोप बढ़ता जा रहा है। धान–गेहूं फसल प्रणाली वाले क्षेत्रों में धान की फसल में ब्लास्ट रोग एवं तना छेदक कीट (जो कि पहले बासमती धान की लंबी किस्मों में लगते थे, परंतु आजकल धान की सभी किस्मों में दिखाई देने लगे हैं), शीथ ब्लाइट रोग (पहले सीमावर्ती क्षेत्रों में दिखाई पड़ती थी, परंतु आजकल धान के सम्पूर्ण क्षेत्रों में इसका प्रकोप होने लगा है), फाल्स स्मट या झूंठा कंडवा रोग (पहले भरपूर उपज का सूचक मानी जाती थी, परंतु वर्तमान में फसल को भारी क्षति पहुंचाती है), जीवाणु पत्ती झुलसा रोग एवं गेहूं की फसल में पाउडरी मिल्ड्यू एवं रस्ट (रतुआ रोग) नामक रोगों का प्रकोप काफी बढ़ गया है।

धान सघनता प्रणाली

धान सघनता प्रणाली (श्री विधि)

इस प्रणाली का अंग्रेजी नाम सिस्टम ऑफ राइस इंटेंसिफिकेशन है एवं हिन्दी में इसको धान सघनता प्रणाली के नाम से जाना जाता है। आम जनता के बीच में यह प्रणाली 'श्री' विधि (एस.आर.आई.) के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रणाली में पौध की रोपाई 8–10 दिनों अथवा अधिकतम 14 दिनों की संस्तुति की गई है। इस प्रणाली में धान की रोपाई करते समय ध्यान रखना चाहिए कि पौधशाला से पौध को उखाड़ने एवं खेत में रोपाई के बीच कम से कम समय लगना चाहिए अन्यथा पौध के मरने की आशंका रहती है। इस विधि में भी खेत की तैयारी परंपरागत तरीके से की जाती है, परंतु पौध की रोपाई के वक्त खेत में भरा हुआ पानी नहीं रहना चाहिए। पौध की रोपाई 25 सें.मी. × 25 सें.मी. की दूरी पर करते हैं एवं एक स्थान पर एक ही पौधा रोपा जाता है। इस विधि की मुख्य विशेषता यह है कि खेत में भरा हुआ पानी (जलाक्रांत) नहीं रखना है। खेत को हमेशा नमीयुक्त रखना आवश्यक है। बार–बार कुछ अंतराल पर हल्की सिंचाई करना एवं खेत को पानी रहित रखना पड़ता है ताकि मृदा में पर्याप्त वायु संचार हो सके। पौध रोपाई के 3 दिनों बाद खेत में 1.0 से 2.0 सें.मी. पानी भरें एवं अगली बार सिंचाई तब करें जब खेत में से भरा हुआ पानी रिस जाए एवं मृदा में बाल के समान दरारें दिखाई देने लगें। खेत में यह स्थिति पुष्पगुच्छ निकलना शुरू होने तक बनाये रखें। इसके बाद खेत में 2.0 से 3.0 सें.मी. पानी भरा हुआ रखें। फसल कटाई के 20–25 दिनों पूर्व खेत में सिंचाई बंद कर दें। खरपतवार प्रबंधन के लिए हस्तचालित अथवा शक्तिचालित 'रोटेटिंग हो' या 'कोनो वीडर' का प्रयोग संस्तुत किया गया है।

वायवीय धान

पर्यावरण प्रदूषण

हम सब जानते हैं कि अधिक कार्बन: नाइट्रोजन अनुपात के कारण खेत में धान के पुआल का प्रबंधन एक बहुत बड़ी समस्या है। इस समस्या से छुटकारा पाने एवं गेहूं की समय पर बुआई के लिए किसान धान की पुआल को खेतों में ही जला देते हैं। पुआल को जलाने पर काफी मात्रा में जहरीली गैसें वातावरण में मिल जाती हैं, जिससे वातावरण की हवा अशुद्ध हो जाती है। इसके साथ ही अधिक मात्रा में उपयोग किए गए उर्वरक एवं कीटनाशक पर्यावरण में मौजूद पानी के स्रोतों को प्रदूषित कर देते हैं।

धान–गेहूं फसल प्रणाली से संबंधित समस्याओं का समाधान

फसल विविधीकरण

फसल विविधीकरण से आशय है कि वर्तमान कम उत्पादक एवं कम लाभदायक फसल प्रणाली को अधिक उत्पादक एवं अधिक लाभदायक नई फसल प्रणाली में बदल दिया जाए। वर्तमान धान–गेहूं फसल प्रणाली के विविधीकरण का सबसे अच्छा तरीका यह है कि इस प्रणाली में तीसरी फसल का समायोजन कर दिया जाए। मार्च में या 15 अप्रैल तक गेहूं की फसल की कटाई हो जाती है। इसके बाद लगभग 75 दिनों तक खेत एकदम खाली रहता है। इस समय का उपयोग तीसरी फसल लेने में किया जाए। तीसरी फसल के रूप में ग्रीष्मकालीन मूंग एक बेहतर विकल्प हो सकता है। मूंग की फसल 60–65 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। अगर मूंग की बुआई 15 अप्रैल तक कर दी जाए तो यह फसल 15–20 जून तक पककर तैयार हो जाती है। मूंग की फसल से किसानों को एक तो अतिरिक्त फसल की उपज मिल जाती है। दूसरा सबसे बड़ा फायदा यह होता है कि दलहनी फसल होने के कारण यह मृदा की उर्वरता एवं स्वास्थ्य में सुधार करती है। फलियां तोड़ने के उपरांत बचे हुए फसल अवशेष को मृदा में जोतने से कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि होती है। बाद में बोई जाने वाली धान एवं गेहूं की फसल को काफी फायदा होता है। इस प्रकार धान–गेहूं फसल प्रणाली में ग्रीष्मकालीन मूंग का समायोजन करके मृदा उर्वरता एवं स्वास्थ्य में सुधार करके इस प्रणाली को टिकाऊ बनाया जा सकता है।

कार्बनिक खादों का उपयोग

अधिक उपज एवं मृदा की भौतिक दशा में सुधार के लिए 8–10 टन प्रति हैक्टर की दर से अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद फसल बुआई के पूर्व खेत में डालकर जुताई कर अच्छी तरह मृदा में मिला दें। गोबर की खाद का उपयोग 3 साल में एक बार अवश्य करना चाहिए। गोबर की खाद के अलावा कम्पोस्ट खाद या केंचुआ खाद का भी उपयोग किया जा सकता है। कम्पोस्ट खाद में तो पोषक तत्वों की मात्रा गोबर की खाद के लगभग ही होती है। केंचुआ खाद में पोषक तत्वों की मात्रा गोबर की खाद से 2–3 गुना तक होती है। इसलिए केंचुआ खाद की मात्रा गोबर खाद की तुलना में एक तिहाई तक उपयोग करनी चाहिए।

हरी खाद का उपयोग

धान–गेहूं फसल प्रणाली को टिकाऊ बनाने में हरी खाद एक महत्वपूर्ण कारक साबित हो सकती है। इस प्रणाली की दोनों फसल धान्य कुल में आती हैं। धान्य कुल की फसलें होने के कारण ये मृदा से लगातार अत्यधिक मात्रा में पोषक तत्वों का अवशोषण करती रहती हैं, जिससे मृदा की उर्वरता में काफी गिरावट आती है। इस प्रणाली में टिकाऊपन के लिए मूंग की फसल द्वारा फसल विविधीकरण किया जा सकता है। कुछ क्षेत्रों में सिंचाई सुविधा के अभाव में यदि मूंग की फसल लेना संभव नहीं हो वहां पर मई में मानसून पूर्व की वर्षा होने पर हरी खाद के लिए ढैंचा की बुआई की जा सकती है। जब ढैंचा की फसल 45 दिनों की हो जाए तो मृदा पलटने वाले हल से फसल को खेत में मिला देनी चाहिए। अगर मई–जून में भी वर्षा के अभाव में हरी खाद लेना संभव नहीं हो तो इस फसल प्रणाली को अपनाने वाले किसान ढैंचा को हरी खाद के लिए धान के साथ सह फसल के रूप में उगा सकते हैं। इस विधि में ढैंचा की धान की रोपाई के साथ ही खेत में बुआई कर दी जाती है। धान की फसल के साथ में ही बढ़ने दिया

धान की फसल में उचित जल प्रबंधन

धान की फसल में उचित जल प्रबंधन के द्वारा धान–गेहूं फसल प्रणाली में मौजूद समस्याओं को कम किया जा सकता है एवं इस प्रणाली को टिकाऊ बनाया जा सकता है। धान बुआई की पारंपरिक विधि में फसल उत्पादन के लिए बहुत अधिक मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है। इससे भूजल सतह में गिरावट आई है एवं मृदा संरचना तथा स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। वैसे तो धान बुआई की नवीन तकनीकों को अपनाकर सिंचाई के लिए आवश्यक पानी की मात्रा को कम कर सकते हैं। पारंपरिक विधि में भी उचित जल प्रबंधन के द्वारा सिंचाई जल की मात्रा में कमी की जा सकती है। पारंपरिक विधि से बुआई किए गए धान में अस्थायी गीलापन एवं सूखापन क्रिया द्वारा जल का उचित प्रबंधन किया जा सकता है। अस्थायी गीलापन एवं सूखापन क्रिया में धान की फसल में रोपाई से लेकर पुष्पगुच्छ निकलना शुरू होने तक बीच–बीच में कुछ समय के लिए खेत को पानी से खाली रखते हैं। ऐसा करने से एक तो पानी की बचत होगी एवं साथ ही साथ हानिकारक ग्रीनहाउस गैसों के उर्त्सजन में भी कमी आती है।

जाता है। ढैंचा की फसल जब 40–45 दिनों की हो जाए तब 2,4–डी खरपतवारनाशी के छिड़काव द्वारा ढैंचा को सुखा दिया जाता है। इसके लिए 2,4–डी खरपतवारनाशी की 0.5 कि.ग्रा. सक्रिय मात्रा को एक हैक्टर क्षेत्रफल में छिड़क दिया जाता है। 2,4–डी के छिड़काव से ढैंचा की फसल एवं अन्य चौड़ी पत्तियों वाले खरपतवार सूखकर खत्म हो जाते हैं एवं मृदा में मिल जाते हैं। ढैंचा की फसल लेग्युमिनेसी कुल के अंतर्गत आती है। इस कारण मृदा में काफी मात्रा में वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करती है। साथ में ही यह सड़ने के उपरांत बड़ी मात्रा में कार्बनिक पदार्थ एवं पोषक तत्व भी मृदा में छोड़ती है, जिससे मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ती है। इस प्रकार ढैंचा को हरी खाद के रूप में लगाकर, इस फसल प्रणाली में उत्पन्न समस्याओं को दूर किया जा सकता है।

उर्वरकों का संतुलित उपयोग

धान एवं गेहूं की फसलों में असंतुलित उर्वरक उपयोग के कारण मृदा में पोषक तत्वों की कमी हो गई है एवं फसल की उत्पादकता भी कम हो रही है। इस समस्या का केवल एक ही समाधान है–संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन। संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन के लिए सबसे जरुरी है खेत की मृदा की समय पर जांच एवं मृदा जांच रिपोर्ट के आधार पर ही पोषक तत्वों का प्रयोग करें। संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन के लिए मृदा जांच के हिसाब से प्राथमिक, द्वितीयक एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग किया जाना चाहिए। संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन से मृदा में मौजूद आवश्यक पोषक तत्वों का पर्याप्त संतुलन बना रहता है एवं फसल उत्पादन अच्छा प्राप्त होता है।

संसाधन संरक्षण तकनीकों को अपनाना

धान–गेहूं फसल प्रणाली में टिकाऊपन के लिए संसाधन संरक्षण तकनीकों जैसे–गेहूं की शून्य जुताई विधि से बुआई, फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन, गेहूं की कूंड़ सिंचित उठी हुई क्यारी पर बुआई, लेजर विधि द्वारा खेतों का समतलीकरण आदि को अपनाना होगा। प्रमुख संसाधन संरक्षण तकनीकों का विवरण आगे दिया गया है।

ढैंचा की फसल का भू–पोषण में बढ़ता महत्व

फसल अवशेष प्रबंधन

धान–गेहूं फसल प्रणाली वाले क्षेत्रों के ज्यादातर किसान धान के पुआल को खेत में ही जला देते हैं। आजकल गेहूं की कटाई कम्बाइन से करवाई जाती है। इससे दाने के अलावा बाकी के फसल अवशेष खेत में ही रह जाते हैं जिसे किसानों के द्वारा जला दिया जाता है। फसल अवशेष को खेत में ही जला देने से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में कमी हो रही है। यह मृदा उर्वरता एवं जल धारण क्षमता के कम होने का कारण है। फसल अवशेषों को खेत में जला देने से मृदा में मौजूद लाभदायक जीवों की भी मृत्यु हो जाती है। साथ ही साथ पर्यावरण प्रदूषित होता है एवं जलवायु परिवर्तन के लिए उत्तरदायी गैसों का उर्त्सजन होता है। इन समस्याओं के समाधान के लिए आवश्यक है कि फसल के अवशेषों का उचित प्रबंधन किया जाए। अवशेष प्रबंधन के लिए यह आवश्यक है कि संरक्षित खेती को अपनाकर लगभग 30 प्रतिशत अवशेषों को मृदा सतह पर रखा जाता है एवं बाकी फसल अवशेषों को मृदा में दबा दिया जाता है। इससे मृदा में नमी का संरक्षण होता है। फसल पर खरपतवारों का प्रकोप कम होता है, मृदा में उचित तापमान बना रहता है, मृदा उर्वरता बढ़ने से कम से कम मात्रा में आदानों की आवश्यकता होती है। इससे खर्च में कमी होती है एवं फसलों से अधिक उत्पादन प्राप्त होता है।

गेहूं की मेड़ों पर बुआई

इस तकनीक में फसलों की बुआई मेड़ों पर करने के लिए एक विशेष यंत्र जिसे 'बेड प्लांटर' कहते हैं, तैयार किया गया है। इस तकनीक में 70–75 सें.मी. की दूरी पर मेड़ें बनाई जाती हैं। इससे लगभग 35 सें.मी. चौड़ी मेड़ और इतनी ही चौड़ी एवं गहरी नाली बन जाती है। प्रत्येक मेड़ पर धान–गेहूं की तीन–तीन कतारें लगायी जा सकती हैं। यह तकनीक खेतों की भली–भांति जुताई करने के बाद या पिछली फसल के लिए बनाई गई मेड़ों पर बिना जुताई के भी अपनायी जा सकती है। इस विधि से बुआई करने के कई लाभ हैं जैसे–वर्षा काल में खेतों में पानी भरने पर मेड़ों पर लगे पौधे सुरक्षित रहते हैं। रबी में गेहूं की सिंचाई करने पर पानी की मात्रा 20–30 प्रतिशत तक कम लगती है। साथ ही प्रति इकाई पानी की उत्पादकता भी बढ़ती है। इस तकनीक में बीज एवं उर्वरकों की मात्रा 15–20 प्रतिशत तक कम लगती है, क्योंकि इनका प्रयोग केवल मेड़ों पर ही किया जाता है।

धान बुआई की नई विधियों को अपनाना

धान की पारंपरिक बुआई विधि से मृदा संरचना एवं स्वास्थ्य में नुकसान होता है। पर्यावरण प्रदूषण होता है, फसल को अधिक पानी की आवश्यकता होती है एवं उत्पादन

लेजर विधि द्वारा खेतों का समतलीकरण

इस विधि में खेत के समतलीकरण के लिए एक विशेष उपकरण लेजर लैण्ड लेवलर का उपयोग किया जाता है। यह उपकरण लेजर तकनीक पर कार्य करता है। अन्य तकनीकों जैसे–शून्य जुताई एवं मेड़ों पर बुआई के लिए सबसे जरुरी यह है कि खेत पूरी तरह समतल होना चाहिए अन्यथा बुआई ठीक से नहीं हो पाती है। मृदा में बीज बुआई समान गहराई पर नहीं हो पाती है, जिससे बीजों का अंकुरण ठीक से नहीं हो पाता है। सामान्य लैण्ड लेवलर से खेत का समतलीकरण ठीक से नहीं हो पाता है। परंतु लेजर लैण्ड लेवलर के उपयोग से खेत को एकदम ठीक से समतल किया जा सकता है, समतल भूमि पर फसल लगाने का सबसे बड़ा फायदा पानी की बचत एवं अधिक फसल उत्पादकता है। सिंचाई का पानी खेत के हर कोने में समान रूप से कम समय में फैल जाता है। धान की फसल के लिए तो यह बहुत उपयोगी है, जिसमें सिंचाई जल की मात्रा लगभग आधी हो जाती है।

खर्च अधिक होता है। इन समस्याओं के समाधान के लिए कृषि वैज्ञानिकों द्वारा धान बुआई की निम्न नवीन तकनीकें विकसित की गई हैं :

धान की सीधी बुआई

धान बुआई की यह नवीन तकनीक ऊपरी क्षेत्रों के लिए विकसित की गई है। बुआई की इस विधि में धान की बुआई अन्य फसलों की बुआई के समान ही करते हैं। इस विधि में पर्याप्त नमी की अवस्था में जुताई करके खेत को तैयार कर लेते हैं। बीज की बुआई मई-जून में कर देते हैं। बुआई करते समय पर्याप्त नमी है तो बीज का अंकुरण हो जाता है अन्यथा जब वर्षा आती है तब बीज का अंकुरण हो जाता है। यह विधि उन क्षेत्रों के लिए बहुत ही कारगर है जहां पर अधिक वर्षा के कारण धान की बुआई में देरी होती है। ऐसे क्षेत्रों में मानसून की वर्षा होने से पहले ही सीधी बुआई कर देते हैं एवं जब वर्षा होती है तब बीजों का अंकुरण हो जाता है।

वायवीय (एरोबिक) धान

यह धान उगाने की एक आधुनिक विधि है, जो सिंचाई के लिए कम पानी उपलब्ध होने की परिस्थिति में बहुत ही कारगर है। वायवीय विधि से धान उगाने के लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि इस परिस्थिति के लिए उपयुक्त किस्मों एवं तकनीकों का विकास किया जाए। धान की कुछ किस्में जैसे-पी.आर.-1160, पी.आर.एच.-10, पूसा-834, सुगंध-5 आदि को इस विधि के द्वारा सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इस विधि से धान उगाने के लिए उपयुक्त किस्मों की लेह रहित (बिना पडलिंग) दशा में सीडड्रिल अथवा देसी हल से सीधे खेत में बुआई करते हैं अथवा गेहूं की भांति धान को उगाया जाता है। इसमें एक हैक्टर में धान की बुआई के लिए 30-40 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 20-25 सें.मी. रखते हुए सीडड्रिल से बुआई की जाती है। बुआई के समय मृदा में पर्याप्त नमी का होना आवश्यक होता है। वायवीय विधि से बुआई किए गए धान में मृदा के सूखने पर सिंचाई की जाती है। एक सिंचाई में केवल इतना ही पानी दिया जाता है कि खेत की मृदा क्षेत्रीय क्षमता पर आ जाए। उत्तरी भारत में इसकी बुआई का उपयुक्त समय जून है। इस विधि में अधिक उर्वरकों की आवश्यकता होती है। वायवीय धान के लिए 150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की संस्तुति की गई है। एक-तिहाई नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस व पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा बुआई के समय कूंड़ों में डालना अति लाभकारी है। नाइट्रोजन की शेष दो-तिहाई मात्रा को दो बराबर भागों में बांटकर कल्ले बनते समय और पुष्पावस्था पर देना चाहिए। फसल में बाली निकलने से लेकर पकने की अवस्था तक खेत में पर्याप्त नमी का होना आवश्यक होता है। पारंपरिक धान उगाने की विधि की तुलना में वायवीय धान में 50-55 प्रतिशत तक सिंचाई जल की बचत होती है। खेत में से ग्रीनहाउस गैस मीथेन के उत्सर्जन में 90 प्रतिशत तक की कमी आती है। पडलिंग नहीं होने से मृदा संरचना एवं स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है, उत्पादन खर्च कम आता है एवं फसल से अच्छा उत्पादन प्राप्त होता है।

समन्वित खरपतवार प्रबंधन

धान-गेहूं फसल प्रणाली को लगातार अपनाने एवं खरपतवार प्रबंधन के एक समान तरीकों को लंबे समय तक अपनाने से इस फसल प्रणाली के क्षेत्रों में खरपतवारों की समस्या काफी जटिल हो गई है। लगातार 2,4-डी का उपयोग करने से विशेषत: संकरी पत्ती वाले खरपतवारों जैसे-गेहूं की फसल में जंगली जई व गुल्लीडंडा तथा धान में जंगली धान के प्रकोप में काफी बढ़ोतरी हुई है। गुल्लीडंडा के प्रबंधन के लिए पहले के किसान लगातार आइसोप्रोटूरोन का उपयोग करते थे, जिस कारण इस खरपतवार में इस खरपतवारनाशी की प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न हो गई। लगातार खरपतवारनाशियों के प्रयोग से खेत की मृदा एवं पानी प्रदूषित हो रहा है एवं पर्यावरण भी प्रदूषित हो रहा है। अत: समन्वित खरपतवार प्रबंधन को अपनाया जाएं। समन्वित खरपतवार प्रबंधन में खरपतवारों के प्रबंधन के लिए सभी संभव एवं उपलब्ध तरीकों (भौतिक, यांत्रिक, रासायनिक एवं जैविक क्रियाएं) को सम्मलित रूप से उपयोग किया जाता है। सभी उपलब्ध तरीकों के उपयोग से खरपतवारों का सही तरीके से प्रबंधन कर सकते हैं। इससे प्रतिरोधक क्षमता के उत्पन्न होने की आशंका नहीं रहती है।

समन्वित कीट एवं व्याधि प्रबंधन

एक ही भूमि पर लगातार धान-गेहूं फसल प्रणाली को अपनाने से इन दोनों फसलों में रोगों एवं कीटों का प्रकोप बढ़ता जा रहा है। इन फसलों में ऐसे-ऐसे रोगों एवं कीटों का प्रकोप होने लगा है जिनका प्रकोप पहले नहीं होता था। इसका सबसे बड़ा कारण तो लगातार एक ही कुल की फसलों की खेती करना, जबकि दूसरा कारण है कीट एवं व्याधियों का अनुचित तरीकों से प्रबंधन। कीट एवं व्याधियों के समन्वित प्रबंधन द्वारा धान-गेहूं फसल प्रणाली का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। इस प्रणाली को टिकाऊ भी बनाया जा सकता है। इसमें समन्वित प्रबंधन के लिए कीट एवं व्याधियों के प्रबंधन के सभी उपलब्ध एवं संभव तरीकों को सम्मलित रूप से उपयोग किया जाता है। इनमें प्रतिरोधी किस्मों का चयन, रोग एवं व्याधि से मुक्त बीज का चुनाव, बीज का उपचार, खेत की मृदा का उपचार, जैव कीटनाशकों व रोगनाशकों का उपयोग, आवश्यकतानुसार रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग, यांत्रिक क्रियाएं, कृष्य क्रियाएं एवं भौतिक क्रियाएं आदि को शामिल किया जा सकता है। समन्वित प्रबंधन के तरीकों को अपनाने से रोग एवं कीटों में प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न होने की आशंका कम हो जाती है, कम खर्च होता है। इससे पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य पर होने वाले बुरे प्रभावों को कम किया जा सकता है एवं फसलों से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। ■

भूजल सतह में निरंतर गिरावट

भारत विश्व का सबसे बड़ा जल उपभोक्ता है एवं यहां पर विश्व के एक तिहाई जल का उपभोग होता है। कृषि क्षेत्र की बात करें तो भारत में धान-गेहूं फसल प्रणाली सबसे अधिक क्षेत्र में अपनायी जाने वाली फसल प्रणाली है। धान्य फसलों में धान की फसल को सर्वाधिक पानी की आवश्यकता होती है, इसके बाद गेहूं की फसल को। हरित क्रांति के बाद इन दोनों फसलों में सिंचित क्षेत्रफल में हो रही लगातार वृद्धि एवं पानी के अनियंत्रित उपयोग के कारण भूजल स्तर में काफी गिरावट दर्ज की गई है। पंजाब, हरियाणा एवं उत्तर प्रदेश में धान-गेहूं फसल प्रणाली वाले क्षेत्रों में सर्वाधिक गिरावट दर्ज की गई है। अगर इसी तरह पानी का दोहन होता रहा तो आने वाले दिनों में हमारे देश में फसल उत्पादन के लिए तो दूर, पीने के लिए भी पानी उपलब्ध नहीं होगा।

पशु चारे के लिए नैपियर घास की खेती

गोविन्द कुमार वर्मा[1] और **वीरेंद्र कुमार प्रजापति**[2]
राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन परियोजना
तुलसी कृषि विज्ञान केंद्र, दीन दयाल शोध संस्थान, गनीवा-चित्रकूट-210206 (उत्तर प्रदेश)

“ नैपियर घास चारे की अधिक उपज देने वाली बहुवर्षीय फसल है। एक बार खेत में रोपण करने के पश्चात यह लगभग 4-5 वर्षों तक हरा चारा प्रदान करती है। स्वादिष्ट और घनी ऊंचाई के कारण हाथी इसे चाव से खाना पसंद करते हैं व इसमें आसानी से छिप जाते हैं इसलिए इसे हाथी घास भी कहते हैं। यह दो प्रकार की होती है: पहले प्रकार में पत्तियों और तने पर रोएं और दूसरे प्रकार में तना चिकना और मुलायम होता है। पशु दूसरी प्रकार की नैपियर घास को स्वाद से खाना पसंद करते हैं। संकर नैपियर घास की पैदावार और पौष्टिकता सबसे अधिक होती है। ”

नैपियर घास से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए उचित जल निकास वाली दोमट मृदा सर्वोत्तम रहती है।

खेत की तैयारी

सर्वप्रथम एक जुताई मृदा पलटने वाले हल से, तत्पश्चात एक-दो जुताई देसी हल से की जाती है। इसके उपरांत खेत में पाटा चलाकर समतल कर दिया जाता है।

खाद की मात्रा

खेत में रोपित करने के पश्चात 4-5 वर्षों तक नियमित रूप में हरे चारे की उपलब्धता सुनिश्चित हो जाती है। इसलिए खेत की उर्वराशक्ति में वृद्धि एवं अधिक चारा प्राप्त करने के लिए नैपियर रोपण से पूर्व 250-300 क्विंटल प्रति हैक्टर की दर से गोबर की खाद खेत में भलीभांति समान रूप से फैला देनी चाहिए। रोपाई अवधि में 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन और प्रत्येक कटाई उपरांत 500 कि.ग्रा. नाइट्रोजन डालना आवश्यक होता है। खेत में एक बार 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 50 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से अवश्य डालनी चाहिए।

उन्नत किस्में

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झांसी में प्रमुख रूप से विकसित और देश के अन्य भागों के लिए संस्तुत उत्तम तथा उच्च उत्पादन क्षमता वाली प्रजातियों का विकास हुआ है। नैपियर घास की उन्नत किस्में निम्नलिखित हैं:

- इगफ्री न-03,06 एवं 10
- एन-बी.-21
- पूसा जाइंट
- गजराज

बुआई का समय

नैपियर के जड़दार कल्लों को रोपित करने

[1]विषयवस्तु विशेषज्ञ-पशु विज्ञान; [2]तकनीकी सहायक

की अवधि फरवरी के दूसरे सप्ताह से जुलाई तक उपयुक्त मानी जाती है। सिंचाई की व्यवस्था न होने पर इसकी जड़ों को जून या जुलाई में मानसून के आरंभ में रोपित करना चाहिए।

बीज की मात्रा

बीज के स्थान पर नैपियर की जड़ों या कल्लेदार तनों का रोपण किया जाता है। इसके लिए 20,000 टुकड़ों की प्रति हैक्टर आवश्यकता होती है।

बुआई की विधि

नैपियर घास के रोपण के लिए इसकी जड़ों या तनों के टुकड़ों को लाइन से लाइन की दूरी 100 सें.मी. और पौधे से पौधे की दूरी 50 सें.मी. रखनी चाहिए। नैपियर के तनों के टुकड़ों को लगाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि टुकड़ों में 2 गांठ अवश्य हों एवं एक गांठ जमीन के अंदर तथा दूसरी गांठ जमीन के ऊपर रहे।

सिंचाई

नैपियर की बुआई के उपरांत तुरन्त सिंचाई करें तथा दूसरी सिंचाई 6-7 दिनों बाद और गर्मियों में 10-14 दिनों के अंतराल पर करनी चाहिए। प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई अवश्य करनी चाहिए।

निराई-गुड़ाई

नैपियर घास रोपण के आरंभ में खरपतवारों की अधिकता रहती है। इसलिए प्रारंभिक अवस्था में पौधे के छोटे रहने पर निराई-गुड़ाई करके खरपतवारों को निकाल देना चाहिए। खरपतवार नियंत्रण के लिए एट्राजिन 3-4 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर

नैपियर घास

500-600 लीटर पानी में घोलकर छिड़कना चाहिए।

कटाई

हरे चारे के लिए नैपियर की पहली कटाई, रोपाई के 2 माह बाद करनी चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में 40-45 दिनों के अंतराल पर और वर्षा ऋतु में 30-35 दिनों पर करनी चाहिए। हरे चारे की फसलों में उपलब्धता बहुत कम होने की स्थिति में पशुओं को हरा चारा नियमित आपूर्ति के लिए नैपियर घास दी जाती है। इसके लिए खाद व पानी का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

उत्पादन

नैपियर घास से हरे चारे की उपज लगभग 1500-1800 क्विंटल प्रति हैक्टर प्रति वर्ष होती है।

बीज उत्पादन

नैपियर घास से बीज का उत्पादन प्राय: नहीं लिया जाता है। बीज उत्पादन के रूप में जड़ों एवं तनों को प्राप्त करने के लिए क्षेत्र विशेष में कम से कम 100 दिनों या इससे अधिक समय तक कोई कटाई नहीं ली जाती है। इससे पौधों के तने सख्त हो जाते हैं और प्रति पौधे से अधिक से अधिक टुकड़े रोपण योग्य प्राप्त हो जाते हैं। बीज की मात्रा तनों की लंबाई तथा प्रति पौधा कल्लों की संख्या पर निर्भर करते हैं।

नैपियर घास के रोपण हेतु बीज जड़ों को प्राप्त करने एवं तकनीकी जानकारी प्राप्त करने के लिए कृषि विज्ञान केंद्र (भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली) दीन दयाल शोध संस्थान गनीवा-चित्रकूट-210206 (उत्तर प्रदेश) के शैक्षणिक प्रक्षेत्र में स्थित हरा चारा उत्पादन प्रदर्शन इकाई का अवलोकन किया जा सकता है। पशुओं के लिए वर्षभर हरे चारे की उपलब्धता सुनिश्चित करने, जरूरत के दिनों के लिए नैपियर घास के महत्व एवं उपयोगिता की जानकारी भी विस्तार से प्राप्त की जा सकती है। इसके लाभ से अवगत होकर अनेक पशुपालक इसका भरपूर उत्पादन प्राप्त करके पशुओं के वृद्धि-विकास, जनन-प्रजनन, स्वास्थ्य व उत्पादन के लिए खिला रहे हैं। पौष्टिक और स्वादिष्ट होने के कारण इसका प्रभाव पशुओं पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। ■

मूंग की दो नई किस्में

मूंग की बुआई के लिए उत्तर प्रदेश में मूंग की दो नई किस्मों की पहचान की गई है। ये किस्में कणिका (आईपीएम-302-2) और वर्षा (आईपीएम 2के 14-9) हैं, जो कि व्यावसायिक तौर पर अधिक पैदावार के मद्देनजर काफी उपयोगी बताई जा रही हैं। इन किस्मों में बसंतकालीन बुआई के लिए कणिका (आईपीएम-302-2) एक उपयुक्त किस्म हैं साथ ही खरीफ में भी इसका उत्पादन अच्छा होता है। एक ट्रायल के दौरान यह देखा गया कि पूसा 9531 (1092 कि.ग्रा./हैक्टर) की अपेक्षा इस किस्म का बसंतकालीन मौसम में उत्पादन (1192 कि.ग्रा./हैक्टर) अधिक है। इस किस्म का औसत उत्पादन बसंत समय में 922 कि.ग्रा./हैक्टर, जबकि खरीफ में 524 कि.ग्रा./हैक्टर है। इस किस्म का परीक्षण उत्तर प्रदेश के विभिन्न भागों में किया गया है। यह 61-68 दिनों के अंतराल पर विकसित होती है, जबकि खरीफ में 65-72 दिनों में विकसित होती है। यह किस्म पत्तियों के मुड़ने व धब्बा आदि रोग प्रतिरोधक है।

इससे अलग दूसरी किस्म वर्षा, खरीफ के लिए उपयुक्त किस्म है। इसका उत्पादन आईपीएम, 02-3 की अपेक्षा 20 प्रतिशत अधिक पाया गया है। इस किस्म का औसत उत्पादन राज्य के अलग-अलग हिस्सों में 560 कि.ग्रा./हैक्टर दर्ज किया गया है। इस दौरान मेरठ में सर्वाधिक उत्पादन 1065 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर पाया गया है। इसका विकास 65-70 दिनों में होता है। यह किस्म मूंग में होने वाली पीला मोजैक व पाउडरी मिल्ड्यू रोग के खिलाफ लड़ने में सक्षम पाई गई है। इसके बीज हरे एवं चमकदार पत्ते होते हैं। उत्तर प्रदेश में इन दोनों किस्मों की बुआई से मूंगबीन का उत्पादन स्तर काफी बढ़ गया है। ■

जैवविविधता के लिए घातक है गाजर घास

कमलेश मीना[1], रजनीश श्रीवास्तव[1], अनुराधा रंजन कुमारी, रघुवीर मीना[2], मनोज पाण्डेय[1], शमशेर सिंह[1], रामप्रताप साहू[1], अभय सिंह[1] और **अजय तिवारी[1]**

" गाजर घास हमारे देश में दूसरे देश से आयातित एक खरपतवार है। यह खरपतवार हमारे देश में ही नहीं अपितु विश्व के लगभग 20 देशों में फैला हुआ है। आज हमारे देश के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में खेती योग्य भूमि के साथ-साथ खाली पड़े सार्वजनिक स्थालों जैसे-रेल की पटरियों के किनारे, कॉलेजों के पास, अस्पतालों के पास, खेल के मैदानों के पास, सड़क के किनारों एवं अन्य खाली स्थानों पर भी यह अपनी जड़ें जमा चुकी है। जहां यह खरपतवार होती है वह भूमि बंजर बन जाती है। देश में लगभग 35 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल में यह घास अपने पैर पसार चुकी है। यदि समय रहते इसके नियंत्रण की ओर ध्यान नहीं दिया गया तो एक समय ऐसा आयेगा कि यह घास अच्छी तरह अपने पैर जमा चुकी होगी। किसानों के सामने एक और नई समस्या उत्पन्न हो जाएगी कि खेती करने से पहले इस घास से कैसे छुटकारा पाया जाए। यह घास केवल फसलों के लिए ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण जीवों (मानव जाति, पशु, पक्षियों और विभिन्न प्रकार की जैवविविधता) एवं पर्यावरण के लिए भी घातक है। "

आज लगभग प्रत्येक फसल, गाजर घास के द्वारा प्रभावित। वैज्ञानिकों का मानना है कि इसके द्वारा प्रतिवर्ष फसलों में लगभग 40 से 80 प्रतिशत तक उत्पादन में कमी हो रही है।

क्या है गाजर घास

यह एक सफेद फूलों वाला विदेशी खरपतवार है। इसका वानस्पतिक नाम *पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस* है। इसको हमारे देश में पार्थेनियम, सफेद टोपी, चटक चांदनी, गंधी बूटी इत्यादि अलग-अलग नामों से जाना जाता है। इस घास की ऊंचाई 90 सें.मी. से 1 मीटर तक होती है। इसकी पत्तियां गाजर या गुलदाउदी की पत्तियों जैसी दिखाई देती हैं। यह अपना जीवन चक्र लगभग 3-4 महीने में पूरा कर लेती है। इस घास का जमाव वर्षा ऋतु में अधिक होता है। अनुकूल वातावरण मिलने पर वर्षभर इसका जमाव होने के साथ-साथ यह फलती-फूलती रहती है। गाजर घास का प्रत्येक पौधा 5000 से 25000 तक बीज पैदा करता है। इसके बीज कई वर्षों तक जमीन में पड़े रहते हैं।

कैसे होता है गाजर घास का फैलाव

इस घास का प्रसारण मुख्यत: बीजों द्वारा होता है। बीजों के फैलाव के लिए प्रमुख रूप से निम्नलिखित विधियां उत्तरदायी हैं जैसे-फसलों के बीज, सिंचाई के द्वारा, खाद, हवा, वर्षा का पानी, मड़ाई के यंत्र, यातायात के संसाधन इत्यादि के माध्यम से एक जगह से दूसरी जगह पर फैलाव होता है।

[1]भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान-कृषि विज्ञान केन्द्र, मल्हना, देवरिया (उत्तर प्रदेश); [2]एसकेआरएयू-कृषि अनुसंधान केन्द्र, श्रीगंगानगर (राजस्थान)

फैलाव के मुख्य माध्यम

- **बीज के द्वारा:** बीज उत्पादन करने वाले प्रक्षेत्रों में अथवा उनकी मेड़ों पर इस खरपतवार का प्रकोप है। सावधानीपूर्वक फसल की कटाई एवं मड़ाई नहीं की जाए तो इस खरपतवार के बीज फसल के बीजों के साथ मिल जाते हैं और फसल के बीजों के साथ अन्य खेतों तक पहुंच जाते हैं।
- **सिंचाई के द्वारा:** नहर के किनारों पर गाजर घास बहुतायत से देखी जा सकती है। नहर या नालियों में उगी गाजर घास के बीज पकने के बाद वहीं गिर जाते हैं। घास से प्रभावित नहर के पानी अथवा नालियों के माध्यम से सिंचाई करने पर इस घास के बीजों का फैलाव हो जाता है और सिंचाई के पानी के साथ खेतों में पहुंच जाते हैं।

गाजर घास को जड़ समेत उखाड़कर करें नष्ट

गाजर घास से होने वाले दुष्प्रभाव

यह घास हमारी खेती के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण जैवविविधता के लिए एक नासूर (घाव) की तरह घातक होती जा रही है। वैज्ञानिकों के द्वारा अनुसंधानों में इसकी पुष्टि की गई है। इसके द्वारा होने वाले दुष्पभाव निम्न हैं:

- **पर्यावरण:** विश्व के लगभग 20 देशों में इस खरपतवार का प्रकोप देखा गया है। यह घास ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में जहां भी भूमि खाली है उसको अपनी चपेट में ले लेती है। यह तेजी से फैलकर अन्य वनस्पतियों एवं जीवों के लिए हानिकारक हो जाती है।
- **फसलों पर प्रभाव:** इसमें तेजी से फैलने की क्षमता होने के कारण यह फसलों के साथ-साथ अन्य उपयोगी वनस्पतियों को भी खत्म कर देती है। वैज्ञानिकों ने खोज में पाया है कि इस घास से खास तरह के रसायनों का स्राव होता है, जिनका फसलों पर दुष्पभाव पड़ता है। इस तरह के फसलों पर पड़ने वाले दुष्पभावों के कारण ही यह खेती के लिए नुकसानदायक होती जा रही है। इस खरपतवार के कारण किसानों को प्रतिवर्ष विभिन्न फसलों में उपज का लगभग 40 प्रतिशत से भी अधिक नुकसान उठाना पड़ता है। इतना ही नहीं इसके नियंत्रण पर खर्च अधिक होने के कारण प्रति इकाई लागत भी बढ़ जाती है, जिससे किसानों को मुनाफा कम नुकसान ज्यादा होता है।
- **मृदा पर प्रभाव:** मृदा से पोषक तत्वों को ग्रहण करने की क्षमता फसलों की अपेक्षा इसमें कई गुना अधिक होती है। इस प्रतिस्पर्धा में हमारी फसल हार जाती है। अनुकूल वातावरण मिलने पर यह घास वर्षभर उगती रहती है। यह मृदा की सतह से पोषक तत्वों एवं नमी का अवशोषण तेजी से करती है। लगातार मृदा सतह से पोषक तत्वों का अवशोषण करने के कारण मृदा बंजर हो जाती है।
- **मानव पर प्रभाव:** गाजर घास से मनुष्य में त्वचा संबंधी रोग जैसे एक्जिमा, एलर्जी के साथ-साथ दमा एवं बुखार इत्यादि हो जाते हैं। अत्यधिक प्रभाव होने पर मनुष्य की मृत्यु तक भी हो सकती है।
- **पशुओं पर प्रभाव:** विषैली होने के कारण पशुओं के लिए यह खरपतवार अत्यधिक नुकसानदायक है। यदि पशु इसको खा लेता है तो पशुओं को मुंह का अल्सर हो जाता है। मुंह से लार का अधिक स्राव होता है, अधिक मात्रा में पशु को खिला दिया जाए तो पशु की मृत्यु भी हो सकती है। इससे होने वाले अन्य रोग हैं-त्वचा पर धब्बे एवं आंख से पानी आना इत्यादि।
- **खाद के द्वारा:** आमतौर पर देखा गया है कि किसान गोबर एवं पशुओं की बिछावन को ठीक ढंग से संरक्षित नहीं रखते हैं, उस स्थान पर अनेक खरपतवार जमे रहते हैं। गाजर घास के साथ-साथ अन्य खरपतवारों के बीज पकने के बाद खाद में मिल जाते हैं और खाद के साथ खेत तक पहुंच जाते हैं।
- **पशुओं के द्वारा:** इस घास से प्रभावित चरागाह में जब पशु चरने के लिए जाते हैं तो उनके द्वारा भी बीज एक स्थान से दूसरे स्थान तक फैल जाते हैं।
- **वर्षा के पानी द्वारा:** गाजर घास का एक पौधा एक बार में 5000 से 25000 बीज पैदा करता है। ये बीज वर्षा के पानी के साथ बहकर एक खेत से दूसरे खेत तक पहुंच जाते हैं।
- **हवा के द्वारा:** इस घास के बीज हवा के साथ भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से पहुंच जाते हैं।
- **मड़ाई के यंत्रों द्वारा:** गाजर घास से प्रभावित फसल की मड़ाई कराने के बाद यदि मशीन को अच्छी तरह से साफ नहीं किया जाए तो इस घास के बीज की दूसरे बीजों के साथ मिलने की आशंका रहती है।
- **यातायात के संसाधनों द्वारा:** सार्वजनिक स्थानों पर जहां इस घास का प्रकोप रहता है, उस स्थान से यातायात के संसाधनों के माध्यम से भी इसके बीजों का फैलाव हो जाता है।

गाजर घास के विषैले प्रभाव से बचना है जरुरी

कैसे करें गाजर घास का प्रबंधन

भूमि को गाजर घास मुक्त करने के लिए सामुदायिक प्रयास बहुत जरुरी हैं। गांवों, शहरी कॉलोनियों, स्कूलों, महाविद्यालयों में रहने वाले लोगों, विद्यार्थियों एवं किसानों को चाहिए कि वे अपने आसपास की भूमि को गाजर घास मुक्त रखें, ताकि इस समस्या को जड़ से नष्ट किया जा सके।

इस खरपतवार को निम्नलिखित विधियों जैसे-यांत्रिक विधि, रासायनिक विधि, जैविक विधि इत्यादि के द्वारा नियंत्रण किया जा सकता है।

- **यांत्रिक विधि:** इसको समूल नष्ट करने के लिए फूल आने से पहले जड़ से उखाड़ना अति आवश्यक होता है। इसको हाथों में दस्ताने पहन कर जड़ से उखाड़ना चाहिए। इसका कोई भी भाग शरीर के सम्पर्क में नहीं आना चाहिए। यह काम पूरे क्षेत्र में सबको मिलकर एक तरह से अभियान चलाकर करना चाहिए ताकि इसको एक साथ समूल नष्ट किया जा सके। इसके लिए खुरपी का भी प्रयोग किया जा सकता है। गर्मी के दिनों में फसल की कटाई होने के बाद खाली पड़ी भूमि की कल्टीवेटर से दो-तीन जुताई कर देनी चाहिए। इससे खरपतवार के बीज एवं वानस्पतिक भाग पूर्ण रूप से नष्ट हो जाएं। वर्षा ऋतु में इसको फूल आने से पहले जड़ से उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए अथवा कम्पोस्ट या वर्मीकम्पोस्ट बनाना चाहिए।
- **रासायनिक विधि:** रासायनिक विधि से नियंत्रण करने के लिए विविध फसलों में विभिन्न प्रकार की दवाओं का प्रयोग किया जाता है। शुरू की अवस्था में जब पौधे 2-3 पत्तियों के हो जाएं तब खाली खेतों में खरपतवारनाशियों जैसे ग्लाइफोसेट 1.5 से 2.0 प्रतिशत अथवा मेट्रीब्यूजिन 0.3 से 0.5 प्रतिशत अथवा 2, 4-डी 0.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व का 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर फूल आने के पहले छिड़काव करना चाहिए। छिड़काव करते समय ध्यान रहे कि पौधे घोल के द्वारा अच्छी तरह भीग जाएं ताकि प्रभावी तरीके से इसका नियंत्रण हो सके।
- **जैविक नियंत्रण:** वैज्ञानिकों ने खोज में पाया है कि इसका नियंत्रण करने के लिए कुछ कीटों का भी प्रयोग किया जा सकता है, जैसे मैक्सिकन बीटल के द्वारा इस खरपतवार की रोकथाम की जा सकती है। इस कीट का एक वयस्क बीटल एक पार्थेनियम के पौधे को लगभग 6 से 8 सप्ताह में खा जाता है। जिस स्थान पर पार्थेनियम की मात्रा अधिक हो वहां पर 500-1000 वयस्क बीटल छोड़ देने चाहिए। इस प्रकार छोड़े गए वयस्क बीटल उस स्थान की गाजर घास समाप्त होने के बाद उसके आसपास वाले क्षेत्रों में उगी हुई घास को खाकर नष्ट कर देते हैं। इस बीटल में प्रजनन करने की अपार क्षमता होती है, जिससे इनकी संख्या बहुत तेजी से बढ़ती है। इस बीटल की खास बात यह है कि यह केवल पार्थेनियम को ही खाती है। घर के आसपास एवं संरक्षित क्षेत्रों में गेंदे के पौधे लगाकर इसके फैलाव व वृद्धि को रोका जा सकता है।

अनुसंधानों में पाया गया है कि फसलों एवं हमारी मृदा के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण जैवविविधता के लिए यह घास खतरनाक है। इसलिए हम सब की जिम्मेदारी है कि इस खतरनाक घास के प्रति सभी को जागरुक करें, ताकि समय रहते इस घास पर आसानी से नियंत्रण किया जा सके।

चीनी उत्पादन में ब्राजील से आगे हुआ भारत

भारत, अमेरिकी कृषि विभाग की एक रिपोर्ट के अनुसार, पिछले कई दशकों से चीनी उत्पादन में प्रथम चल रहे ब्राजील से आगे हो गया है। देश में चीनी उत्पादन 5.2 प्रतिशत बढ़कर 4 करोड़ टन पहुंच गया है, वहीं ब्राजील का उत्पादन 30 प्रतिशत घटकर 3.6 करोड़ टन रह गया है। ब्राजील में चीनी उत्पादन में गिरावट का कारण वहां का प्रतिकूल मौसम और गन्ने से निकलने वाले इथेनॉल की खपत न होना है। ये आंकड़े भारत में अक्टूबर से सितम्बर के बीच के और दक्षिणी अमेरिकी देशों में अप्रैल से मार्च के बीच के हैं। अभी भी निर्यात में ब्राजील पहले स्थान पर बना हुआ है और इसके बाद थाईलैंड का नंबर आता है। अनुमानित है कि चीनी के वैश्विक उत्पादन में 4.5 प्रतिशत यानी 185.9 मिलियन टन की गिरावट आने की आशंका से ब्राजील, थाईलैंड और यूरोपीय संगठन में इसके वैश्विक उत्पादन पर भारी असर पड़ेगा और इस समय भण्डार बढ़ने से चीन-यूरोप से इसकी आपूर्ति कम होगी। अमेरिकी बाजारों में इस साल चीनी में 18 प्रतिशत और पिछले वर्ष 22 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की गई। रिपोर्ट के अनुसार, अन्य देशों में चीनी उत्पादन में हो रही वृद्धि के चलते चीनी मिलों को काफी नुकसान उठाना पड़ रहा है। दुनिया भर के बाजारों में इसकी कीमतों पर उल्लेखनीय प्रभाव दर्ज किया गया।

प्लास्टिक बोतल में ढिंगरी मशरूम का उत्पादन

प्रवीण कुमार[1], आर. के. सिंह[2], हेम चन्द्र लाल[3] और निधिका रानी[4]

मशरूम उत्पादन ग्रामीण इलाकों में भूमिहीन किसानों, बेरोजगार किसानों और महिलाओं के लिए वरदान साबित हो रहा है। इसके उत्पादन के लिए उपजाऊ खेत की जरूरत नहीं पड़ती है। मशरूम का उत्पादन झोंपड़ियों, कमरों (पक्के एवं कच्चे) में आसानी से किया जा सकता है। जागरूक, इच्छुक प्रगतिशील, ग्रामीण शिक्षित बेरोजगार नवयुवक, नवयुवतियां नई तकनीक द्वारा मशरूम उत्पादन करने के लिए आगे आ रहे हैं। व्यावसायिक रूप से भारत में खुंभ का उत्पादन वर्ष 1971 से शुरू हुआ। उस समय इसका वार्षिक उत्पादन लगभग 100 टन था, जो कि वर्ष 1985-86 में 4 हजार टन, वर्ष 1992 में 12 हजार टन, वर्ष 1995-96 में 30 हजार टन एवं वर्ष 2012-13 में बढ़कर 1 लाख 50 हजार टन हो गया। इसमें सबसे ज्यादा बटन मशरूम प्रजाति का हिस्सा है। उत्पादन के दृष्टिकोण से देखा जाए तो ढिंगरी मशरूम का विश्व में तीसरा स्थान तथा भारत में दूसरा स्थान है। भारत में इसका वार्षिक उत्पादन लगभग 7 हजार टन है। विश्व में मशरूम उत्पादन में भारत का 15वां स्थान है।

विश्व में मशरूम की 10 हजार से ज्यादा प्रजातियां हैं, जिनमें भारत में अब तक लगभग 912 प्रजातियां पायी गई हैं। इनमें से कुछ ही प्रजातियां खाने योग्य हैं। भारत में मुख्य रूप से चार प्रजातियों का ही व्यावसायिक उत्पादन किया जाता है, जो निम्नलिखित हैं :

1. ढिंगरी मशरूम
2. दूधिया मशरूम
3. बटन मशरूम
4. पुआल मशरूम

ऑयस्टर मशरूम को आम बोलचाल की भाषा में ढिंगरी मशरूम कहते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम प्ल्यूरोट्स है। इस मशरूम की लगभग 40 प्रजातियां पाई जाती हैं। इसमें से 10-12 प्रजातियां प्रमुख हैं, जिसका व्यावसायिक उत्पादन भारत में मौसम एवं जलवायु के अनुसार विभिन्न स्थानों पर किया जाता है। इस मशरूम की निम्नलिखित

प्लास्टिक बोतल में उत्पादित ढिंगरी मशरूम

> “आहार विशेषज्ञों के अनुसार ढिंगरी मशरूम की पौष्टिकता की तुलना मांस से की जाती है। इसे शाकाहारी मनुष्यों के लिए शाकीय मांस भी कहते हैं। इसमें मौजूद एंटी-ऑक्सीडेंट हमें फ्री रेडिकल्स से बचाता है। इसमें अतिविशिष्ट प्रोटीन पाया जाता है, जिसमें लाइसिन नामक अमीनो अम्ल होता है। इसके अलावा इसमें खनिज लवण, विटामिन, बी, सी, डी, नियासिन अम्ल, पर्याप्त मात्रा में होने के कारण यह कैंसर, ब्लड प्रेशर, मधुमेह, कब्ज, मोटापा, हृदय रोग एवं अनेक तरह के रोगों से लड़ने में सहायक या उपयुक्त होता है। कुछ मशरूम की प्रजातियां कैंसर एवं कुपोषण में असरदार होती हैं। इसके उपयोग से कैंसर होने वाले कारक को रोका जा सकता है। इसमें 18-19 तरह के अमीनो अम्ल एवं विटामिन डी पाये जाते हैं। इसकी वजह से गांवों के बाजार से लेकर शहरों के बड़े-बड़े मॉलों में इसकी खपत दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। हमारे देश में खपत के अनुसार उत्पादन काफी कम है।”

[1]वैज्ञानिक (पौधा संरक्षण); [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक सह अध्यक्ष, होली क्रॉस कृषि विज्ञान केन्द्र, हजारीबाग (झारखण्ड); [3]सहायक प्राध्यापक सह कनिष्ठ वैज्ञानिक, पौधा रोग विभाग; [4]सहायक प्राध्यापक-पौध रोग विभाग, रांची कृषि महाविद्यालय, रांची (झारखंड); [4]आईसेक्ट विश्वविद्यालय हजारीबाग (झारखण्ड)

प्रजातियां हैं, जो भारत में प्रमुख रूप से उगाई जाती हैं, जैसे कि प्ल्यूरोट्स सजोर काजू, प्ल्यूरोटस फ्लोरिडा, प्ल्यूरोटस डीजामोर, प्ल्यूरोटस ऑस्ट्रीएटस। इसमें प्ल्यूरोट्स सजोर काजू को बरसात और गर्मी में तथा प्ल्यूरोटस फ्लोरिडा एवं प्ल्यूरोट्स ऑस्ट्रीएट्स को सर्दियों के मौसम में लगाकर उत्पादक ज्यादा उपज ले सकते हैं।

उत्पादन में प्रयुक्त पोषाधार का निर्जीवीकरण

निर्जीवीकरण के लिए 2 इंच से 2.5 इंच कटी 5 कि.ग्रा. पुआल या गेहूं भूसा या सरसों का भूसा जिसमें किसी प्रकार का फफूंद का प्रकोप न हो, का उपयोग करते हैं। इसे 50 लीटर पानी में 5-7 ग्राम बाविस्टिन एवं 65-80 मि.ली. फार्मेलिन से बने घोल में उपचारित करते हैं। इसके बाद पोषाधार को 14-16 घंटे तक प्लास्टिक शीट से अच्छी तरह से ढककर छोड़ देते हैं। इसके बाद स्वच्छ पॉलीथीन शीट पर साफ हाथों से

ढिंगरी मशरूम उत्पादन के लिए एकत्रित प्लास्टिक बोतल

बोतल में ढिंगरी मशरूम का उत्पादन

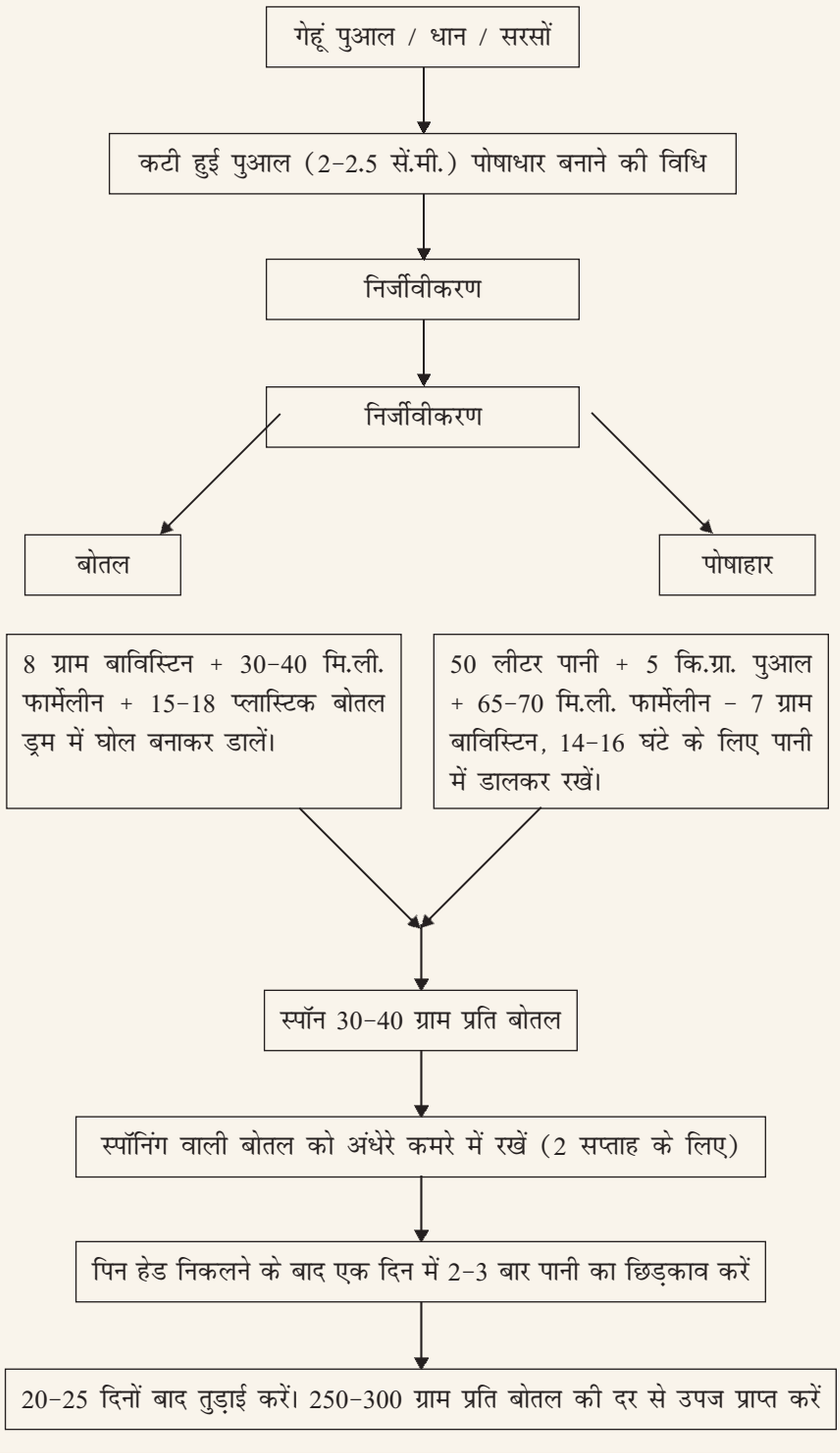

उपयोगी मशरूम

प्रकृति का उपहार मशरूम अपने पौष्टिक एवं औषधिय गुणों के कारण सदियों से लोकप्रिय रहा है। स्वादिष्ट होने के साथ-साथ यह स्वास्थ्यवर्धक भी होता है, जिसके कारण इसे शाही खाद्य पदार्थों में शामिल किया जाता है। मशरूम एक बहुत ही उपयोगी फफूंद है। हरित कवक नहीं होने से यह प्रकाश संश्लेषण नहीं कर पाता है। यह लिग्निन, सेल्यूलोज तथा हेमीसेल्यूयोज युक्त कार्बनिक पदार्थों से अपना भोजन ग्रहण करता है।

ढिंगरी मशरूम उत्पादन के लिए एकत्रित प्लास्टिक बोतलों में छिद्र करने एवं काटने का सही तरीका

प्लास्टिक बोतलों में उगे ढिंगरी मशरूम

सारणी : विभिन्न तरह की ढिंगरी की प्रजातियों में पोषक तत्व

मशरूम	कार्बोहाइड्रेट	रेशा	प्रोटीन	वसा	राख	ऊर्जा
प्ल्यूरोटस सजोर काजू	63.40	28.80	19.23	2.70	6.32	412
प्ल्यूरोटस ऑस्ट्रीएटस	57.60	5.50	30.40	2.20	9.80	265
प्ल्यूरोटस डीजामोर	58.20	8.70	30.40	2.20	9.80	265
प्ल्यूरोटस फ्लोरिडा	57.23	5.27	30.40	2.50	8.75	280

ढिंगरी मशरूम को प्लास्टिक बोतल में उगाने की विधि

तापमान	:	22-26^0 सेल्सियस
आपेक्षिक आर्द्रता	:	80-85 प्रतिशत
समय	:	अगस्त से मार्च
फसल तैयार होने का समय	:	20-25 दिन

ढिंगरी मशरूम का उत्पादन पॉलीथीन बैगों में आसानी से करते आ रहे हैं, लेकिन अब इसकी जगह उपयोग की हुई प्लास्टिक की बोतल एवं उपयोग की हुई पानी की बोतल का इस्तेमाल भी किया जा सकता है, जो कि आज तक कचरे के समान थी। सर्वप्रथम शीतल पेय या पानी की बोतलों का रासायनिक विधियों से निर्जीवीकरण करते हैं। इसके लिए 20 लीटर पानी में 8 ग्राम बाविस्टिन और 30-40 मि.ली. फार्मेलीन का घोल बनाकर 15-18 बोतल के अनुसार कटे हुए एवं 10-12 छिद्र की हुई बोतल को 2-2.5 घंटे के लिए किसी ड्रम में डुबोयें और ड्रम का ऊपरी सिरा प्लास्टिक से बंद कर दें। इसके बाद 1/2 घंटे के लिए छाया में सुखा दें।

निकाल कर फैला देते हैं, इससे पुआल से अतिरिक्त पानी एवं फार्मेलीन की गंध पूरी तरह से निकल जाये इसके लिए पोषाहार को बीच-बीच में पलटते रहते हैं।

गीले पुआल में उचित नमी की मात्रा

भीगे हुए पुआल में 60 प्रतिशत तक ही नमी की मात्रा होनी चाहिए। ज्यादा नमी की मात्रा होने से रोग फैलने तथा सड़ने का खतरा रहता है। नमी कम होने पर कवक जाल फैलने में रुकावट होती है। इसके लिए हम पुआल को हाथ में लेकर निचोड़कर देखते हैं, ताकि इससे पानी न आए पर हाथों मे हल्की नमी महसूस हो तब समझना चाहिए पुआल में सही नमी है।

बोतलों का निर्जीवीकरण

ढिंगरी मशरूम का भरपूर उत्पादन

बोतल में पोषाहार को भरने की विधि

एक बोतल में 30-40 ग्राम ताजा मशरूम स्पॉन का उपयोग करते हैं। उपचारित बोतल के ढक्कन को अच्छी तरह से लगा देते हैं। उसके बाद नीचे से कटे भाग से पोषाहार बोतल में डालते हैं तथा हल्के हाथों से दबाते हैं। इसके बाद 2-3 इंच की सतह बनाते जाते हैं, उस पर स्पॉनिंग करते हैं। इसके बाद उसी सतह पर एक चुटकी चूना एवं बेसन डालते हैं, उसके बाद बोतल को टेप से बंद कर देते हैं। फिर जिस सतह पर स्पॉनिंग करते हैं, उस सतह पर सुई की सहायता से बोतल में 0.5 सें.मी. व्यास का छिद्र कर देते हैं। इस तरह एक बोतल में कुल 10-12 छिद्र करते हैं। इस तरह हवा का आवागमन अच्छी तरह से हो सके। इसके बाद बोतल को ठंडे एवं अंधेरे रूम जो पहले से ही उपचारित है, उसमें 2 सप्ताह के लिए रख देते हैं। इस रूम में किसी भी तरह का आवागमन नहीं करते हैं तथा सभी खिड़की-दरवाजे बंद रखते हैं। 15 दिनों के आसपास बोतल में कवक जाल अच्छी तरह फैल जाता है। इसके बाद रूम में ताजी हवा एवं हल्की रोशनी की व्यवस्था करनी चाहिए तथा जरूरत पड़ने पर 3-4 घंटे बल्ब जला देना चाहिए।

तुड़ाई एवं उपज

पूरी तरह से कवक बोतल फैलने से बोतल का रंग सफेद हो जाता है। इसके बाद बोतल में किए गये छिद्र से सीपीनुमा मशरूम 20-25 दिन के बाद निकल जाते हैं, जिसे उंगलियों के बीच फंसाकर मोड़कर तोड़ते हैं। इस तरह से 5-7 दिनों के अंतराल पर एक बोतल से 250-300 ग्राम तक ताजा मशरूम प्राप्त करते हैं।

फसलों का सच्चा मित्र है ट्राइकोडर्मा

आशीष कुमार त्रिपाठी[1] और **ए.के. सिंह**[2]

" खेत की मिट्टी में फफूंद की अनेक प्रजातियां पायी जाती हैं। इनमें से कुछ प्रजातियां फसलों को नुकसान पहुंचाती हैं, वहीं दूसरी ओर कुछ प्रजातियां लाभदायक होती हैं जैसे ट्राइकोडर्मा। ट्राइकोडर्मा एक प्रकार का मित्र फफूंद है, जो विभिन्न प्रकार की दालों, तिलहनी फसलों, कपास, सब्जियों एवं कुछ फल जैसे अमरूद आदि फसलों में पाया जाता है। यह मृदाजनित रोग उकठा, आर्द्रपतन, कंद विगलन और जड़गलन आदि को नियंत्रित करने में एक महत्वपूर्ण योगदान देता है। यह फसलों में रोग उत्पन्न करने वाले फफूंद को रोकता है। ट्राइकोडर्मा, स्वयं मृदाजनित फफूंद है इसलिए यह उचित वातावरण पाकर मृदा में भलीभांति फैलता एवं पनपता है तथा नर्सरी की अवस्था में पौधे को सुरक्षा प्रदान करता है। "

मृदाजनित रोग फ्यूजेरियम, पिथियम, राइजक्टोनिया, स्क्लेरोशिया, फाइटोफ्थोरा आदि फफूंद की कुछ प्रजातियों से होते हैं, जो बीज के अंकुरण से लेकर वृद्धि तक पौधे को प्रभावित करते हैं। निदान के लिए रासायनिक दवाओं का इस्तेमाल आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद नहीं होता है। सामान्यत: फफूंद पर रासायनिक दवाओं का प्रभाव 10 से 20 दिनों तक रहता है। यदि फिर इनका प्रकोप होता है तो इन रोगों का प्रबंधन जटिल हो जाता है। लगातार रसायनों के छिड़काव और रासायनिक बीज शोधन से मिट्टी में रहने वाले लाभदायक सूक्ष्म जीवाणुओं पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। निरंतर रसायनों के प्रयोग से रोग पैदा करने वाली फफूंदी में प्रतिरोधक क्षमता भी उत्पन्न होती है तथा रसायनों के अवशेष मानव स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक होते हैं।

ट्राइकोडर्मा की कार्य विधि

ट्राइकोडर्मा व रोगजनकों जैसे फ्यूजेरियम, पिथियम, राइजक्टोनिया आदि में स्थान व पोषण के लिए स्पर्धा प्रतियोगिता होती है, जिससे रोगजनकों की वृद्धि व विकास अवरूद्ध हो जाता है।

ट्राइकोडर्मा के फफूंद तंतु (एप्रिसोरिया), रोगजनकों के फफूंद के तंतुओं के संपर्क में आते ही उन्हें जकड़ लेते हैं। इसके फलस्वरूप रोगजनकों का विकास अवरूद्ध हो जाता है। इसके उपरांत ट्राइकोडर्मा अपने चूषकों (हास्टोरिया) को रोगजनकों के फफूंद तंतुओं में प्रवेश करवाकर उन पर अपनी वृद्धि करने लगता है। इतना ही नहीं साथ ही साथ रोगजनकों के अंदर कई प्रकार के एंजाइम जैसे-काइटिनेज, बीटा 1, 3-ग्लूकाइनेज, प्रोटिएज आदि छोड़ देता है। रोगजनक की कोशिका भित्ति नष्ट हो जाती है व रोगजनक मर जाता है। ट्राइकोडर्मा विभिन्न प्रकार के प्रतिजैविक एवं अन्य पदार्थ

[1]ज.ने.कृ.वि.वि., कृषि विज्ञान केन्द्र, सागर (मध्य प्रदेश), [2]ज.ने.कृ.वि.वि., कृषि विज्ञान केन्द्र, जबलपुर (मध्य प्रदेश)

ट्राइकोडर्मा के प्रयोग बाद स्वस्थ फसल

जैसे-ग्लियोविरिडिन, ग्लियोटाक्सिन, अल्काइल पाइरोल्स आदि भी उत्पन्न करता है, जो रोग जनकों की वृद्धि पर विपरीत असर डालते हैं। ट्राइकोडर्मा द्वारा काइटिनेज परआक्साइड जैसे पदार्थ उत्पन्न होते हैं जिस कारण पौधों में रोग के प्रति प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न हो जाती है। ट्राइकोडर्मा की मृदा में उपस्थिति अघुलनशील रॉकफास्फेट को घुलनशील बनाती है। इसके साथ ही वह जिंक, मैग्नीशियम, लोहा जैसे सूक्ष्म तत्वों की सक्रियता को बढ़ाती है। इस प्रकार पौधे को सकल पोषक पदार्थ उपलब्ध होते हैं। फलस्वरूप पौधों की वृद्धि और विकास अच्छा होता है। इसके अलावा उनमें रोगजनकों के प्रति लड़ने की क्षमता में वृद्धि होती है।

ट्राइकोडर्मा की प्रयोग विधि

- **बीज उपचार:** बीज उपचार के लिए 6-10 ग्राम ट्राइकोडर्मा की मात्रा का प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से प्रयोग करते हैं, लेकिन ध्यान यह देते हैं कि यह पाउडर सभी बीजों में समान रूप से चिपक जाये। यदि बीज की मात्रा अधिक है तो सीड ट्रीटिंग ड्रम में और यदि बीज की मात्रा कम है तो किसी डिब्बे या पीपे में बीज को ले लें। इसके बाद इसमें निर्धारित मात्रा में ट्राइकोडर्मा पाउडर मिलाकर अच्छी तरह हिलायें। यदि आवश्यक हो तो बीज पर 5-10 मि.ली. पानी का छींटा दें फिर उसे 2-3 घंटे तक छाया में सुखाने के बाद बुआई करें।
- **पौध/पौधे के अन्य वानस्पतिक भागों का उपचार:** इसका उपयोग उप फसलों, जिनमें पौध रोपण किया जाता है, जैसे-टमाटर, बैंगन, मिर्च और प्याज आदि या बीज के रूप में पौधे के वानस्पतिक भाग का उपयोग जैसे गन्ना, आलू और अदरक आदि में किया जाता है। इस विधि में ट्राइकोडर्मा की 10 ग्राम मात्रा को प्रति लीटर पानी में घोल लें। फिर इसमें रोपण के लिए तैयार पौधों की जड़ों को या पौधों के वानस्पतिक भागों को जैसे कंद, प्रकंद, बल्ब आदि को 10-15 मिनट तक डुबोने के बाद रोपण वाली फसलों को तुरंत रोपित करें। वानस्पतिक भागों को थोड़ी देर छाया में सुखाने के बाद ही खेत में बुआई करें। पौध उपचार के लिए 10 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर को एक लीटर पानी में मिलाकर इस घोल से पौधे की जड़ों को नम करें।
- **नर्सरी उपचार:** इस विधि का उपयोग मुख्यत: सब्जी वाली फसलों के लिए किया जाता है, जिनकी पहले हम नर्सरी तैयार करते हैं। फिर इनका रोपण खेत में करते हैं। पौधशाला उपचार के लिए 250 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर को 50 लीटर पानी में घोलें व इस घोल से 400 वर्गमीटर क्षेत्र की पौधशाला की क्यारी को झारा या फव्वारा के माध्यम से तर कर दें या 250 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर को 2-2.5 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद में मिलाकर 400 वर्गमीटर क्षेत्र की पौधशाला (क्यारी) में छिड़ककर इसकी हल्की गुड़ाई कर मिट्टी में मिला दें।
- **मृदा उपचार:** मृदा उपचार के लिए 2.0-2.5 कि.ग्रा. ट्राइकोडर्मा पाउडर को 75-80 कि.ग्रा. पकी हुई गोबर की खाद में मिलाकर 10-15 दिनों के लिए किसी छायादार स्थान में रखकर उसे जूट के बोरे से ढक दें। ध्यान रखें कि उसमें पर्याप्त नमी बनी रहे। बुआई की अंतिम बखरनी के समय उपरोक्त मात्रा को प्रति हैक्टर की दर से बुरकाव करें।
- **खड़ी फसल में छिड़काव:** खड़ी फसल में फफूंदजनित रोगों के लक्षण प्रकट होने पर इनके प्रबंधन के लिए 6-8 ग्राम ट्राइकोडर्मा को प्रति लीटर

ट्राइकोडर्मा का तैयार कल्चर

कम्पोस्ट के साथ ट्राइकोडर्मा

सारणी: व्यावसायिक स्तर पर ट्राइकोडर्मा का उत्पादन

क्र.सं.	उत्पाद	उत्पादक संस्था
1.	ट्राइकोडर्मा	जैव उर्वरक उत्पादन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रेदश)
2.	बायोडर्मा	बायोटेक इंटरनेशनल लिमिटेड नई दिल्ली
3.	इकाडर्मा	मार्गो बायो कन्ट्रोल प्राइवेट लिमिटेड, बेंगलुरु (कर्नाटक)
4.	ट्राइकोगार्ड	अनु बायोटेक इंटरनेशनल लिमिटेड, फरीदाबाद (हरियाणा)
5.	बायोगार्ड	कृषि रसायन एक्सपोर्ट प्राइवेट लिमिटेड, सोलन (हिमाचल प्रदेश)
6.	बायोकान	टोकलाई इक्सपेरिमेंटल स्टेशन, टी रिसर्च एसोसिएशन, जोरहट (असोम)
7.	ईकोफिट	हेक्स्ट एवं शेरिंग एग्रो ईवो लिमिटेड, मुंबई (महाराष्ट्र)
8.	फंगीनिल	क्रॉप हेल्थ बायोप्रोडक्ट रिसर्च सेन्टर, गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)
9.	डिफेन्स एस.एफ.	वोकहार्ड लाइफ साइंस लिमिटेड, मुंबई (महाराष्ट्र)
10.	पंत बायोकंट्रोल एजेन्ट-1	फसल रोग विज्ञान विभाग जी.बी. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर (उत्तराखंड)

ट्राइकोडर्मा का प्रयोग

क्या है ट्राइकोडर्मा

ट्राइकोडर्मा एक फफूंद है, जो सामान्यत: मृदा में पायी जाती है। इसकी कई प्रजातियां हैं, परंतु उनमें ट्राइकोडर्मा विरडी, ट्राइकोडर्मा हारजिएनम, ट्राइकोडर्मा वाइरेन्स अधिक उपयोगी प्रजातियां हैं। यह फफूंद हरे रंग की होती है। ट्राइकोडर्मा, बीजाणुओं के रूप में कोनिडिया तथा क्लेमाइडोस्पोर उत्पन्न करता है। इनमें से क्लेमाइडोस्पोर विपरीत वातावरण में लंबे समय तक जमीन में पड़े रहते हैं। अनुकूल वातावरण मिलने पर यह क्लेमाइडोस्पोर फफूंद तंतु बनाकर वृद्धि करते हैं तथा अधिक संख्या में कोनेडिया (बीजाणु) बनाते हैं।

ट्राइकोडर्मा को यीस्ट या मोलेसेस माध्यम से उगाकर इसका कल्चर तैयार किया जाता है। इस कल्चर को कैल्शियम या चाक पाउडर में 1:2 के अनुपात में मिलाकर वैटेबल पाउडर के रूप में उन्नत कल्चर तैयार किया जाता है। इसे 100 ग्राम, 250 ग्राम, 500 ग्राम या 1 कि.ग्रा. मात्रा को कम घनत्व वाली पॉलीथीन की थैलियों में भरकर विक्रय के लिए तैयार किया जाता है। इन पैकिंगों का मानक इस प्रकार रखा जाता है कि प्रति ग्राम कल्चर में कम से कम $2/10^8$ या इससे अधिक कॉलोनी फार्मिंग यूनिट (सीएफयू) हों।

ट्राइकोडर्मा के प्रयोग से लाभ

- यह आसानी से बाजार में उपलब्ध है।
- यह समन्वित रोग प्रबंधन के लिए आदर्श साधन है।
- इसकी प्रयोग विधि आसान है।
- यह पौधों में विषाक्त अवशेष नहीं छोड़ता है। इसलिए मनुष्य के लिए सुरक्षित है।
- यह पर्यावरण मित्र है।
- इसका प्रयोग जैविक खाद के साथ किया जा सकता है।
- फफूंदीनाशक रसायनों की तुलना में इस पर कम खर्च आता है।
- यह पौधे की बढ़वार में सहायक है, जिससे उत्पादन में भी वृद्धि होती है।
- एक बार प्रयोग करने पर काफी लंबे समय तक इसका प्रभाव रहता है।
- यह कई फफूंदजनित रोगजनकों के खिलाफ कार्य करता है।
- यह सभी जगह में पाया जाता है।

पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

प्रयोग में सावधानियां

- यह क्षारीय भूमि में कम असरकारक है।
- इसके प्रयोग के समय मृदा में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।
- इसके उत्पादों को विश्वसनीय स्रोतों से ही खरीदें।
- इसके उत्पाद प्राप्त करने से पूर्व सुनिश्चित कर लें कि इसे धूप एवं अधिक तापमान में तो भंडारित नहीं किया गया।
- इसे खरीदने के पश्चात तुरंत इस्तेमाल करें। परंतु यदि भंडारण की आवश्यकता हो तो इसे नम व छायादार स्थान पर ही थोड़े समय के लिए भंडारित करें।
- वांछित परिणाम प्राप्त करने के लिए उचित सांद्रण का प्रयोग करें।
- प्रयोग से पूर्व पैकेट में अंकित सभी जानकारियां भलीभांति पढ़ लें।

नर्सरी बेड का ट्राइकोडर्मा से उपचार

अनुशंसा

- ट्राइकोडर्मा का उपयोग सभी प्रकार की फसलों व सब्जियों जैसे कपास, तम्बाकू, सोयाबीन, गन्ना, शकरकंद, बैंगन, चना, अरहर, मूंगफली, मटर, टमाटर, मिर्च, गोभी, आलू, प्याज, लहसुन, बैंगन, अदरक और हल्दी आदि पर किया जाता है।

सीमायें

- इसके उपयोग के बाद 4-5 दिनों तक रासायनिक कवकनाशी का उपयोग न करें।
- सूखी मृदा में ट्राइकोडर्मा का प्रयोग न करें, क्योंकि इसकी बढ़वार व जीवित रहने के लिए नमी बहुत आवश्यक है।
- ट्राइकोडर्मा उपचारित बीज को धूप में न रखें।
- इससे उपचारित गोबर की खाद को ज्यादा समय तक न रखें।

ध्यान देने योग्य बिंदु

- कल्चर में पर्याप्त मात्रा में सी.एफ.यू. (कॉलोनी फार्मिंग यूनिट) होनी चाहिए।
- सही समय पर ट्राइकोडर्मा का उपयोग करें, जिससे हानिकारक फफूंद को यह समय से रोक सके।
- कल्चर का फसल पर सही असर कल्चर उत्पादन तिथि से छ: महीने के अंदर उपयोग करने पर होता है।
- आधुनिक कृषि पद्धति में किसान फसलों में मृदाजनित व बीजजनित रोगों की रोकथाम के लिए केवल रासायनिक फफूंदनाशक दवाओं पर ही निर्भर हैं। विभिन्न प्रकार की समस्यायें जैसे प्रदूषण इससे लगातार एक ही फफूंदनाशक दवा के उपयोग से रोगनाशकों में उसके प्रति प्रतिरोधक क्षमता और उत्पादन लागत में वृद्धि आदि उत्पन्न होती हैं। फसलों में होने वाले रोगों की रोकथाम के लिए रासायनिक फफूंदनाशकों के साथ-साथ जैव फफूंदनाशकों का भी उपयोग करें, जो न केवल हमारे स्वास्थ्य व पर्यावरण के लिए सुरक्षित है बल्कि आर्थिक दृष्टिकोण से भी लाभदायक है।

मशीनों से बीजों की सफाई

योगेश कुमार[1], किपु किरण सिंह महिलांग[2], सौमित्र तिवारी[1] और **यशवंत कुमार[1]**

स्पाइरल सेपरेटर उपकरण

यह एक ऐसी मशीन है जिसके माध्यम से बीजों को उनके आकार के अनुसार घारा और कचरों से अलग किया जा सकता है।

इसकी आकृति कुंडलीनुमा होती है इसलिए इसे अंग्रेजी में स्पाइरल कहते हैं। इस मशीन के ऊपरी भाग में बीज डालने के लिए हॉपर होता है तथा नीचे दो अलग-अलग भाग होते हैं, जिनमें एक भाग में साफ बीज तथा दूसरे में कचरा या खराब बीज इकट्ठा होता है। यह मशीन स्थायी एवं कम जगह पर लगाई जा सकती है। इसके ऊपरी भाग में मिश्रित बीजों को हॉपर में डालते हैं। यहां बीजों को हॉपर में रोकने के लिए एक टीन की प्लेट लगी होती है। इस प्लेट को तब हटाया जाता है, जब मिश्रित बीजों को अलग करना होता है। प्लेट हटाने के बाद मिश्रित बीज कुंडलियों से होती हुई नीचे आता है। कुंडलियों की संख्या पांच होती है, जिनमें चार छोटी तथा एक बड़ी होती हैं।

छोटी कुंडलियों में साफ-सुथरे बीज इकट्ठा तथा बड़ी कुंडली में कचरा एवं अन्य बीज होते हैं। जो बीज गोलाकार होते हैं, वे तेज गति से नीचे आ जाते हैं। जिनकी ऊपरी परत खुरदरी और गोलाकार नहीं होती, वे धीमी गति से दूसरे अलग भाग में निकलते हैं।

साफ बीज को अलग कर बोरियों में भर लिया जाता है, जिससे किसानों को अधिक लाभ प्राप्त होता है।

लाभ

- विद्युत का उपयोग नहीं। श्रम एवं समय की बचत।
- दूसरे कृषकों की बीज की सफाई
- सफाई के बाद बीजों के मूल्य में वृद्धि।
- साफ बीज बोने से उत्पादन में वृद्धि।

क्षमता: यह मशीन बिना विद्युत के ही तीन से चार टन प्रति घंटे बीजों की सफाई की क्षमता रखती है।

[1]खाद्य प्रसंस्करण और प्रौद्योगिकी विभाग, बिलासपुर विश्वविद्यालय (छत्तीसगढ़); [2]कॉलेज ऑफ एग्रीकल्चर एंड रिसर्च स्टेशन, कोरिया (छत्तीसगढ़)

> “देश के बहुत सारे किसानों को विभिन्न प्रकार की फसलों के बीजों को साफ करने में परेशानियों का सामना करना पड़ता है। ऐसे किसानों को बीज साफ नहीं होने के कारण उचित मूल्य प्राप्त नहीं हो पाता है। जो किसान आर्थिक रूप से संपन्न हैं, वे तो विद्युत से चलने वाली मशीनों का उपयोग बीज साफ करने में करते हैं। जो गरीब किसान हैं वह इन मशीनों का इस्तेमाल नहीं कर पाते हैं। ऐसे किसानों की इस परेशानी को ध्यान में रखकर स्पाइरल सेपरेटर मशीन को विकसित किया गया है। यह मशीन कम लागत और कम समय में बीजों को साफ कर किसानों की मदद करती है।”

स्पाइरल सेपरेटर

इस मशीन के माध्यम से सरसों, सोयाबीन, मटर व अन्य गोलाकार बीजों को गेहूं, सन (पटसन) और जई से अलग किया जाता है। साथ ही साथ यह सफाई के भी काम में आती भी है जैसे कि बीजों में मिला हुआ भूसा, डंठल, कंकड़ और पत्थर।

यह मशीन गुरूत्वाकर्षण बल पर काम करती है, जिसमें विद्युत की आवश्यकता बिल्कुल भी नहीं होती है। गुरूत्वाकर्षण बल बीजों की आकृति पर निर्भर करता है, जो आकृति में अधिक गोलाकार होंगे उनकी गति ज्यादा तेज होगी।

लागत: इस मशीन की लागत लगभग 4,000 से 7,000 रुपये है। जिसे केन्द्र सरकार द्वारा 25 प्रतिशत अनुदान पर कृषि विभाग व छत्तीसगढ़ राज्य बीज विभाग के माध्यम से किसानों को प्रदान किया जाता है। ■

लघु एवं सीमांत किसानों को आत्मनिर्भर बनाने का एक सफल प्रयास

ब्रजमोहन[1], एन. रविशंकर[2], आजाद सिंह पंवार[3], चन्द्रेश कुमार चन्द्रेकर[4], पूनम कश्यप[4] और **धनन्जय त्रिपाठी[5]**

" भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की तरफ से छोटे और सीमांत किसानों की आजीविका में सुधार के लिए कई कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। जिनमें किसानों को कृषि वैज्ञानिकों की देखरेख में कृषि प्रणाली मॉड्यूल में फॉर्म प्रक्षेत्र में फसल प्रणाली, पशुधन और उत्पाद विविधीकरण का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। यहां इस प्रणाली से लाभ उठाए किसान की सफलता की कहानी को एक मिसाल के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। छत्तीसगढ़ के कबीरधाम जिला के हीरापुर गांव के परदेशी राम नेतम एक ऐसे किसान हैं, जो कृषि विविधीकरण को अपनाकर अपनी आय को दोगुना कर गांव के अन्य किसानों को भी यह प्रणाली अपनाने के लिए प्रेरित किये हैं। "

सदियों से भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक एवं सामाजिक दोनों ही दृष्टि से कृषि का विशेष योगदान रहा है। निरंतर बढ़ती जनसंख्या एवं पारिवारिक विभाजन ने कृषि योग्य भूमि को छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित कर दिया है। इसके कारण लघु एवं सीमांत किसानों की संख्या में निरंतर बढ़ोतरी हो रही है। कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय वर्ष 2015-16 की रिपोर्ट के अनुसार, देश में 1 हैक्टर या इससे कम आकार के जोतों की संख्या में 23 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है। लघु एवं सीमांत कृषकों की संख्या अधिक होने के कारण सामाजिक दृष्टि से इनका काफी महत्व है। दूसरी ओर कृषि योग्य भूमि का लगभग 52.3 प्रतिशत हिस्सा इनके पास होने से इनका आर्थिक दृष्टि से महत्व अत्याधिक हो जाता है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण की गणना पर आधारित रिपोर्ट के मुताबिक देश में 0.41-1 हैक्टर तक की जोत वाले किसान परिवारों की संख्या लगभग 3 करोड़ 15 लाख है। खेती के ऐसे प्रत्येक परिवार की कुल मासिक आमदनी 2145 रुपये मात्र है। इसके अतिरिक्त अन्य साधन जैसे खेतिहर मजदूरी (2011 रुपये), पशुधन (629 रुपये) एवं गैर खेतिहर कामों (462 रुपये) से भी अतिरिक्त कमाई हो जाती है। सभी स्रोतों से कुल आय 5247 रुपये प्रतिमाह होती है, जबकि सीमांत कृषक परिवार का मासिक उपभोग पर खर्च 6020 रुपये प्रतिमाह है।

कृषि का सुधार करने के साथ-साथ कृषि से संबंधित अन्य गतिविधियां जैसे पशुपालन, मत्स्य पालन एवं कृषि के विविधीकरण में सुधार को बढ़ावा दिया जाना नितांत आवश्यक है। कृषकों के सीमित साधनों से ही आय को बढ़ावा देने की दिशा में भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम, मेरठ द्वारा सफल प्रयास किए गए हैं। भाकृअनुप-भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम, मेरठ के अंतर्गत कार्यरत अखिल भारतीय समन्वित कृषि प्रणाली परियोजना एकीकृत कृषि प्रणाली के इन्दिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर के कृषि विश्वविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र काबर्धा पर चल रहे फार्म प्रक्षेत्र केन्द्र द्वारा श्री परदेशी राम नेतम का चयन 'छोटे एवं सीमांत किसानों की लाभप्रदता और आजीविका में सुधार के लिए कृषि प्रणाली मॉड्यूल में फार्म प्रक्षेत्र का मूल्यांकन' फार्म प्रक्षेत्र शोध शीर्षक के अंतर्गत किया गया। मौजूदा कृषि प्रणाली के श्री परदेशी राम की कृषि एवं संबंधित घटकों से आय 10,315 रुपये प्रति माह थी। परंतु वैज्ञानिकों की देखरेख अधिक उत्पाद में आने वाली बाधाओं की पहचान कर एवं विविधीकरण कर फसल प्रणाली और अन्य घटकों में हस्तक्षेप और प्रशिक्षण के उपरांत उनकी आमदनी 20,616 रुपये प्रति माह हो गयी। यह उसकी मूल आय से लगभग दोगुना के बराबर है। श्री राम नेतम द्वारा अपनाई कृषि प्रणाली से प्रभावित होकर उनके गांव तथा आस-पास के किसान भी अपने फार्म पर कृषि प्रणाली को अपनाने के लिए प्रेरित होने लगे और श्री नेतम से प्रशिक्षण एवं

[1,2,3,5,6]भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम, मेरठ (उत्तर प्रदेश); [4]सहायक प्राध्यापक, एस.के. कृषि महाविद्यालय एवं शोध केन्द्र, काबर्धा, रायपुर

सारणी 1. मौजूदा और उन्नत खेती प्रणाली में उत्पादन, बिक्री योग्य अधिशेष, शुद्ध लाभ और रोजगार, (शुद्ध क्षेत्रफल 1.3 हैक्टर)

मॉड्यूल	विद्यमान कृषि प्रणालियों के संघटक	उन्नत कृषि प्रणालियों के संघटक	मौजूदा खेती प्रणाली (धान समतुल्य उत्पादन क्विंटल)				उन्नत खेती प्रणाली (धान समतुल्य उत्पादन क्विंटल)			
			उत्पादन (कि.ग्रा.)	बिक्री योग्य अधिशेष (कि.ग्रा.)	शुद्ध लाभ (रुपये)	रोजगार (दिन)	उत्पादन (कि.ग्रा.)	बिक्री योग्य अधिशेष (कि.ग्रा.)	शुद्ध लाभ (रुपये)	रोजगार (दिन)
फसल प्रणाली	धान-चना-सब्जियां (1.6 हैक्टर), सोयाबीन-गेहूं (1 हैक्टर) एवं सब्जियां (0.2 हैक्टर), फसलों के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल (2.8 हैक्टर), फसल संघनता 215 प्रतिशत	धान-चना-सब्जियां (1.7 हैक्टर), सोयाबीन-गेहूं (0.9 हैक्टर) एवं सब्जियां-सब्जियां (0.4 हैक्टर), फसलों के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल (3.0 हैक्टर), फसल सघनता 231 प्रतिशत	8983	7154	53680	360	14573	12425	110740	520
पशुधन	गाय देसी (2 नं.), बकरी (7 नं.), मुर्गी देसी (15 नं.), देसी सूअर (1 नं.)	गाय देसी (2 नं.), बकरी (7 नं.) + जमुनापारी (3 नं.), देसी मुर्गी (15 नं.) + वनराज मुर्गी (10 नं.), सूअर, सफेद यार्क शायर (2 नं.)	6022	5807	70096	334	8048	6430	79900	350
पोषण रसोई उद्यान	–	रसोई उद्यान	–	–	–	–	756	511	6900	20
	–	मश रुपयेम	–	–	–	–	296	148	2000	5
	–	फल जैसे केला, आम, पपीता	–	–	–	–	1593	1326	17900	35
	–	मुर्गी	–	–	–	–	1222	778	10500	5
	–	मछली	–	–	–	–	1333	1259	17000	20
प्रसंस्करण एवं अतिरिक्त मूल्य	–	चने से दाल एवं बेसन तथा दूध से दही एवं घी	–	–	–	–	–	–	2450	–
कुल लाभ (रुपये/वर्ष)	–	–	–	–	123776	694 (कुल दिन)	–	–	247390	995 (कुल दिन)
कुल लाभ (रुपये/माह)	–	–	–	–	10315	–	–	–	20616	–

सारणी 2. मौजूदा और उन्नत खेती प्रणाली में बाजार से जुड़ी घरेलू वस्तुओं में बदलाव

घरेलू वस्तुएं	मौजूदा खेती प्रणाली बाजार से खरीदा			उन्नत खेती प्रणाली के कारण बाजार से खरीदी गई वस्तुओं में बदलाव (मात्रा कि.ग्रा.)	खेत पर उत्पादन के कारण बाजार से खरीदी गई वस्तुओं के व्यय में बचत (रुपये)	अपने खेत पर उत्पादन के कारण अतिरिक्त खपत (मात्रा कि.ग्रा.)
	मात्रा (कि.ग्रा.)	कीमत (रुपये)	कुल लागत (रुपये)			
अनाज	0	0	0	0	0	0
दालें (अरहर, उड़द, चना)	80	60	4800	0	4800	40
सोयाबीन (तेल)	30	90	2700	30	0	0
सब्जियां	200	20	4000	0	4200	210
फल	80	50	4000	0	3500	150
दूध	120	30	3600	50	0	0
मुर्गा/बकरे का मांस	50	150	7500	0	6000	40
अंडे (दर्जन में)	120	60	7200	0	0	0

सलाह लेने लगे।

राष्ट्रीय कृषि गणना के अनुसार, सीमांत एवं लघु कृषक 1970-71, 1990-91 और 2010-11 में क्रमशः 70 प्रतिशत, 78 प्रतिशत एवं 85 प्रतिशत थे जिनके द्वारा क्रमशः 21 प्रतिशत, 32 प्रतिशत एवं 44 प्रतिशत भूमि पर खेती की जाती है। इस प्रकार देश में लघु एवं सीमांत कृषकों की जोतों की संख्या तेजी से बढ़ती जा रही है। कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय की वर्ष 2015-16 की रिपोर्ट के अनुसार देश में 1 हैक्टर या इससे कम आकार के जोतों की संख्या में 23 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है। एक ओर जहां लघु एवं सीमांत कृषकों की संख्या अधिक होने के कारण सामाजिक दृष्टि से इनका महत्व है, दूसरी ओर कृषि योग्य भूमि का लगभग 52.3 प्रतिशत हिस्सा इनके पास होने से इनका आर्थिक दृष्टि से महत्व और भी बढ़ जाता है। देश के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक एवं आर्थिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण स्थान होने पर भी इस वर्ग की आय इतनी कम है कि इनका मासिक उपभोग पर खर्च मासिक आय से अधिक है।

रिपोर्ट के मुताबिक देश में 0.41-1 हैक्टर तक की जोत वाले किसान परिवारों की संख्या लगभग 3 करोड़ 15 लाख है। ऐसे प्रत्येक परिवार की मासिक आमदनी 2,145 रुपये मात्र है। इसके अतिरिक्त अन्य साधन जैसे खेतिहर मजदूरी (2,011 रुपये),

पशुधन से (629 रुपये) एवं गैर खेतिहर कामों से (462 रुपये) है। सभी स्रोतों से कुल आय 5,247 रुपये प्रतिमाह होती है, जबकि सीमांत कृषक परिवार का मासिक उपभोग पर खर्च 6,020 रुपये प्रतिमाह है। जनसंख्या के एक बड़े हिस्से का मुख्य रूप से कृषि पर आधारित होने का प्रमुख कारण जमीन की छोटी जोत होना है, इसकी वजह से कृषि मजदूरों की प्रति व्यक्ति आय भी बेहद कम है।

श्री परदेशी राम नेतम, छत्तीसगढ़ के तत्कालीन राज्यपाल द्वारा पुरस्कार ग्रहण करते हुए

कृषि विविधीकरण को किसान ने ऐसे अपनाया

श्री परदेशी राम नेतम पुत्र श्री फुडक सिंह नेतम छत्तीगढ़ के कबीरधाम जिले के हीरापुर गांव के एक सक्रिय किसान हैं। वह अपने 6 सदस्यों वाले परिवार (जिसमें 4 बच्चे) का जीवनयापन मात्र 1.30 हैक्टर भूमि से करते थे। उनके पास रहने के लिए एक अस्थायी झोपड़ीनुमा 2 कमरों का मकान था। कृषि विविधीकरण को अपनाकर अपनी आय दोगुनी करने के साथ आज एक सफल किसान बन गये हैं। वर्तमान कृषि प्रणाली जैसे फसलें, डेयरी, मुर्गी पालन के स्थान पर विविधीकरण कर वैज्ञानिक कृषि प्रणाली जैसे फसलें, मवेशी, बकरी, मुगी, सूअर, मछली, बत्तख, मशरूम और वर्मीकम्पोस्ट प्रणाली के साथ किया गया। फसल प्रणाली में परिवर्तन फसलों की बेहतर अधिक उन्नत वाली प्रजातियां तथा वैज्ञानिक तरीकों से फसलों की उचित मात्रा पोषक तत्व, बीज, पानी आदि विधियों को अपनाना आदि शामिल है। तटबंधों एवं खेत की मेड़ पर सब्जियां एवं अरहर उगाकर उनकी आय में बढ़ोतरी हुई। अपनी भूमि का भरपूर इस्तेमाल करते हुए इन्होंने 0.09 हैक्टर भूमि मछली के तालाब के लिए आंवटित कर तालाब में फिंगर-लिंग्स (रोहू, कतला, मृगल), बत्तख (15 नं.) को एक साथ पाला। अपने घर के पिछले हिस्सें में मुर्गी बाड़ा बनाकर वनराज नामक प्रजातियों की मुर्गियों को रखा और इसी के साथ एकीकृत कृषि प्रणाली में अन्य घटकों जैसे 1 गाय, 3 बकरियां (जमुनापारी) और 2 सूअर (बड़े सफेद यार्कशायर) को एकीकृत किया। इतना ही नहीं अपनी छोटी झोपड़ी में मशरूम उत्पादन के लिए भी प्रेरित हुये। मुर्गियों को खाने के रूप में अनाज, टूटा चावल तथा बेकार फार्म उत्पाद दिया जाता था, जबकि मछलियों को मुर्गी विसर्जन एवं गाय के गोबर को खाने को दिया जाता था।

पशुओं को फसल प्रणाली में उगाये गए हरे-चारे, फसलों के अवशेष तथा यूरिया से उपचारित धान की पुआल खिलाते थे। इन्होंने अपनी 3 बकरियों एवं अन्य उद्यमों (जैसे मछली, बत्तख, मुर्गी, सूअर, मशरूम और वर्मीकम्पोस्ट) के साथ एकीकृत कर अलग-अलग विशेषज्ञों से प्रशिक्षण लिया। अवशेषों को वर्मीकम्पोस्ट की पोर्टेबल इकाई के रूप में खेत में पुनःचक्रण के लिए प्रयोग किया। घर की महिलाओं को प्रसंस्करण मॉड्यूल पर प्रशिक्षण दिया गया। इसमें महिलाओं द्वारा दलहन से दाल, दाल की बड़ी, सब्जियों की सफाई, श्रेणीकरण और मशरूम के सूखे पदार्थ तैयार करना आदि कार्य शुरू किया गया था। कृषि प्रणालियों के विविधीकरण के साथ कृषक परिवार मासिक आय 20,616 रुपये प्रति माह अर्जित करने लगा, जोकि इनकी मूल आय से लगभग दोगुना के बराबर है। जहां एक ओर किचन गार्डन से विविध-उत्पादों जैसे दूध, अंडे, मुर्गी, मांस और सब्जियों से इसके परिवार की पोषण संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति होने लगी, वहीं दूसरी ओर अतिरिक्त फल एवं सब्जियों तथा अन्य उत्पादों को बेचकर इसकी रोजमर्रा की आवश्यकताओं की पूर्ति होने लगी। इसी के साथ-साथ वर्षभर रोजगार भी मिल गया। अपनी बचत से अतिरिक्त 0.50 एकड़ भूमि खरीदने के साथ-साथ रहने के लिए पक्का मकान भी बना लिया।

श्री परदेशी राम नेतम द्वारा अपनाई गई कृषि प्रणाली से प्रभावित होकर उनके गांव तथा आस-पास के किसान भी अपने फार्म पर कृषि प्रणाली को अपनाने के लिए प्रेरित होने के साथ उनसे प्रशिक्षण एवं सलाह लेने लगे। छत्तीसगढ़ के तत्कालीन राज्यपाल द्वारा श्री परदेशी राम नेतम को वैज्ञानिक एकीकरण कृषि प्रणाली मॉड्यूल को अपनाकर अपनी आय को दोगुना करने और गांव के अन्य किसानों को प्रेरित करने में उल्लेखनीय योगदान देने के लिए पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया।

सैद्धांतिक रूप से भले ही यह माना जाता रहा हो कि विकास का प्रारंभ किसी अन्य क्षेत्र जैसे सेवा और उद्योग द्वारा किया जा सकता है। किन्तु यथार्थ रूप में ये क्षेत्र अकेले न तो आर्थिक विकास का प्रारंभ कर सकते हैं और न ही लंबे समय तक विकास क्रम को कायम रख सकते हैं। देश में किसानों की स्थिति सुधारने के लिए जरुरी है कि ऐसे उपाय किए जाये जिससे न सिर्फ उनके आय में बढ़ोतरी हो बल्कि पैदावार भी अधिक हो। इसके लिए आवश्यक कृषि का सुधार करने के साथ-साथ कृषि से संबंधित अन्य गति विधियां जैसे पशुपालन, मत्स्य पालन एवं कृषि के विविधीकरण में सुधार को बढ़ावा दिया जाना नितांत आवश्यक है। कृषकों के सीमित साधनों से ही आय को बढ़ावा देने की दिशा में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अंतर्गत भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम, मेरठ द्वारा दो कदम आगे बढ़ाते हुए सफल प्रयास किए गए। भारत के विभिन्न राज्यों में स्थित 30 राजकीय कृषि विश्वविद्यालय के 32 जिलों में 'छोटे एवं सीमांत किसानों की लाभ प्रदत्ता और आजीविका में सुधार के लिए कृषि प्रणाली मोड्यूल में फार्म प्रक्षेत्र का मूल्यांकन' नामक परियोजना के अंतर्गत 1. फसल प्रणाली विविधीकरण, 2. पशुधन विविधीकरण, 3. उत्पाद विविधीकरण एवं 4 क्षमता विकास (जैसे प्रशिक्षण देना एवं संबंधित आगतों को कृषक को उपलब्ध कराना) को वर्ष 2012-13 से कृषि फार्म प्रक्षेत्र पर संबंधित कृषि विश्वविद्यालय के विभिन्न वैज्ञानिकों की देखरेख में चलाया जा रहा है। प्रत्येक केन्द्र पर 12 किसानों (कुल किसान 384) का चयन किया गया है, जिनके फार्म पर वैज्ञानिकों की देखरेख में इस योजना को चलाया जा रहा है।

इसमें घास एवं दलहन के बीजों को बुआई से पहले एक निर्धारित अनुपात में एक साथ मिला लिया जाता है। इसके बाद इन मिश्रित बीजों को छिटकवां विधि से तैयार खेत में बुआई कर देते हैं। इस विधि से बुआई करने पर अन्य विधियों की तुलना में अधिक बीज की जरूरत होती है। छिटकवां विधि से बुआई करने पर बीजों का वितरण खेत में समान नहीं होने के कारण बीजों का जमाव, फसल वृद्धि एवं विकास प्रतिकूल तरीके से प्रभावित होता है। इसलिए अच्छे चारा उत्पादन के लिए, घास-दलहन मिश्रण की बीज दर में 15-20 प्रतिशत बढ़ोतरी करनी उचित रहती है।

क्या होता है शुष्क क्षेत्र

इन क्षेत्रों की जलवायु परिस्थितियां, अन्य क्षेत्रों की तुलना में काफी भिन्न एवं विषम होती हैं, जिसका विवरण निम्न प्रकार है:

- मानसून काफी देरी से आने के साथ काफी जल्दी वापस चला जाता है। अतः सक्रिय मानसून अन्य क्षेत्रों की तुलना में काफी कम होता है और कम वार्षिक वर्षा होती है।
- यहां पर होने वाली मानसूनी वर्षा अक्सर केवल 4-5 दिनों में पूरी हो जाती है।
- इन क्षेत्रों में रात एवं दिन के तापमान में काफी अंतर रहता है और दिन का तापमान कई बार 45^0 सेल्सियस के ऊपर भी चला जाता है।
- यहां वायु गति विशेष रूप से दिन के समय में काफी तेज रहती है इसलिए यहां वाष्पीकरण से पानी का नुकसान काफी होता है।
- इन क्षेत्रों में वायुमंडल में आर्द्रता कम होने के कारण मौसम सूखा रहता है।
- यहां की मिट्टी रेतीली के साथ-साथ कंकड़युक्त होती है।
- इन क्षेत्रों में वानस्पतिक आवरण का अभाव रहता है।

[1]भाकृअनुप-शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, प्रादेशिक अनुसंधान स्थान, भुज (गुजरात); [2]सस्य विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

शुष्क क्षेत्रों में उपयोगी है घास के साथ दलहन उगाना

सुशील कुमार[1], दीपेश माचीवाल[1] और तेज राम बंजारा[2]

"देश के ऐसे क्षेत्र जहां औसत वर्षा कम होने से सूखा रहता है, वहां पर घास-दलहन को अंतरसस्यन के जरिए एक साथ उगाना लाभकारी रहता है। शुष्क क्षेत्रों में खेती पर कम और पशुपालन पर अधिक जोर होता है। ऐसे में घास और दलहनी फसलों की खेती एक साथ करने से जहां भरपूर चारा मिलता है, वहीं मृदा संरक्षण भी होता है।"

सैंकरस सेटीजेरस

घास-दलहन अंतरसस्यन

इसमें घास एवं दलहन के बीजों को एक साथ मिश्रित न करके अलग-अलग पंक्तियों में एक निर्धारित अनुपात के साथ कृषि यंत्रों की सहायता से बोया जाता है। इसमें पौधों के बीच वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्वों एवं अन्य कारकों के लिए प्रतिस्पर्धा कम से कम होती है। घास-दलहन अंतरसस्यन के लिए 2:1 का अनुपात सबसे सर्वोत्तम माना जाता है, क्योंकि घासों में रेशे की अधिकता होती है जबकि दलहन में प्रोटीन की प्रचुरता पायी जाती है। इस प्रकार 2:1 अनुपात (घास की दो पंक्तियों के बाद तीसरी पंक्ति दलहनी चारे की रहती है) में घास एवं दलहन चारा फसलों को उगाकर अच्छी गुणवत्ता का चारा प्राप्त किया जाता है।

घास-दलहन पट्टी अंतरसस्यन

इस अंतरसस्यन विधि में घास एवं दलहनी चारा फसलों को 5-7 पंक्तियों वाली अलग-अलग पट्टियों में उगाया जाता है। पट्टियों का मतलब है कि 5-7 घास वाली पंक्तियों के बाद अगली 5-7 पंक्तियां दलहन-चारा फसल की बोई जाती हैं। इस प्रकार पंक्तियां घास एवं दलहन फसलों की पट्टियों का आकार ले लेती हैं। आजकल कृषि कार्यों के लिए श्रमिकों की कमी एक बहुत बड़ी समस्या है, इसलिए दिनोंदिन कृषि कार्यों में मशीनों का उपयोग बढ़ता जा रहा है। बुआई के लिए प्रयोग होने वाली मशीनों में अधिकतम 5-7 लाइन होती है। इसलिए घास एवं दलहनी चारा फसलों के पट्टी अंतरसस्यन विधि को अपनाकर मशीनों का सही उपयोग होने के साथ-साथ समय तथा मजदूरों की कमी से भी निजात मिल जाती है।

शुष्क क्षेत्रों के लिए घास-दलहन अंतर सस्यन की उपयोगिता

घास-दलहन अंतरसस्यन, निम्न

प्रकार से शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयोगी है:

मृदा स्वास्थ्य एवं गुणवत्ता

शुष्क क्षेत्रों की मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशा अच्छी नहीं होती है। इन मृदाओं में कार्बनिक पदार्थ, जोकि मृदा स्वस्थ एवं गुणवत्ता का एक अहम पहलू है, की मात्रा अन्य क्षेत्रों की मृदाओं की तुलना में बहुत कम पायी जाती है। कार्बनिक पदार्थ की कम मात्रा की वजह से शुष्क क्षेत्रों की भूमि संरचना तथा जलधारण क्षमता अच्छी नहीं होती है। घास-दलहन अंतरसस्यन को अपनाने से मृदा कार्बनिक पदार्थ के साथ-साथ अन्य पोषक तत्वों की उपलब्धता भी बढ़ जाती है। कार्बनिक पदार्थ की बढ़ोतरी होने से न केवल भूमि की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशाओं में सुधार होता है बल्कि भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ जाती है। अंतरसस्यन में शामिल दलहनी चारा फसल वायुमंडल की नाइट्रोजन अपनी जड़ों में स्थिरीकरण करके भूमि में नाइट्रोजन की मात्रा में बढ़ोतरी करती है। इस प्रकार फसल को जरूरत की दर से नाइट्रोजन की उपलब्धता बनी रहती है जिससे उर्वरकों का प्रयोग काफी सीमा तक कम हो जाता है। असंतुलित एवं लगातार नाइट्रोजन उर्वरकों के प्रयोग से मृदा की गुणवत्ता एवं स्वस्थ पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिए घास-दलहन चारा फसलों का अंतरसस्यन अपनाकर इन प्रतिकूल प्रभावों को रोककर मृदा स्वास्थ्य को स्थिर रखा जा सकता है।

गुणवत्तायुक्त चारा उत्पादन

अनियमित वर्षा तथा विषम जलवायु परिस्थितियों के कारण, शुष्क क्षेत्रों में फसलोत्पादन करना बहुत ही अनिश्चित रहता है। इसलिए यहां के लोगों का जीवनयापन का मुख्य स्रोत पशुपालन या पशुपालन आधारित अन्य व्यवसाय होते हैं। पशुओं से अच्छे उत्पादन के लिए इनको पर्याप्त मात्रा में गुणवत्तायुक्त चारा, जिसका शुष्क क्षेत्रों में बहुत ही अभाव है, की जरूरत होती है। चारे की कमी के साथ-साथ, इन क्षेत्रों में जो चारा उपलब्ध रहता है, वो भी गुणवत्ता में अच्छा नहीं रहता है। यहां उपलब्ध चारों में प्रोटीन के अलावा खनिज लवण विशेषकर कैल्शियम और सल्फर की मात्रा बहुत ही कम होती है इसलिए घास-दलहन अंतरसस्यन अपनाकर शुष्क क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में गुणवत्तायुक्त चारा उपलब्ध कराया

क्लाईटोरिया टरनेटिया

सारणी 1. घास-दलहन अंतरसस्यन का तुलनात्मक परिणाम

उपचार	शुष्क पदार्थ उपज (कि.ग्रा. प्रति हैक्टर)	क्रूड प्रोटीन उपज (कि.ग्रा. प्रति हैक्टर)	क्रूड रेशा (प्रतिशत)	कैल्शियम (प्रतिशत)
एकल फसल				
सेंकरस सिलियारिस	2180	143	33.91	0.17
सेंकरस सेटीजेरस	2021	138	31.33	0.13
क्लाइटोरिया टरनेटिया	2329	461	29.10	0.55
स्टायलोसेंथस हैमाटा	1866	292	25.43	0.73
अंतरसस्यन				
सेंकरस सिलियारिस+क्लाईटोरिया टरनेटिया	3364	472	30.57	.0.66
सेंकरस सेटीजेरस+स्टायलोसेंथस हैमटा	3129	345	28.90	0.41
सेंकरस सेटीजेरस+क्लाईटोरिया टरनेटिया	3429	442	27.97	0.31
सेंकरस सेटोजेरस+स्टायलोसेंथस हैमाटा	3447	422	33.79	0.35

स्टायलोसेंथस हैमाटा

सेंकरस सिलियारिस + स्टायलोसेंथस हैमाटा

जा सकता है। यह देखा गया है कि घास एवं दलहनी चारा फसलों की वृद्धि एवं विकास का चक्र भिन्न होने के कारण फसलों के बीच पानी, प्रकाश एवं पोषक तत्वों को लेकर कोई प्रतिस्पर्धा नहीं होती है। इन सभी संसाधनों का सदुपयोग सुचारू रूप से होता रहता है इसीलिए अंतरसस्यन में दोनों फसलों को अलग-अलग उगाने की तुलना में प्रति हैक्टर अधिक गुणवत्ता चारा प्राप्त किया जाता है। गुणवत्ता के अलावा, अंतरसस्यन से उत्पादित चारा संतुलित भी रहता है। घासों में रेशे (30-35 प्रतिशत) की प्रचुरता पायी जाती है, जबकि दलहनी फसलें प्रोटीन (14-20 प्रतिशत) की एक उच्चतम स्रोत होती हैं। संतुलित चारा खिलाने से पशुओं में होने वाले अफरा रोग को रोका जा सकता है। घास-दलहन अंतरसस्यन पर एक शोध कार्य अखिल भारतीय अनुसंधान संस्थान-केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, भुज, गुजरात (भाकृअनुप-सीएजैडआरआई, आरआरएस, भुज, गुजरात) में किया गया, जिसके परिणाम सारणी-1 में उल्लेखित हैं। शोधकार्य के परिणामों के अनुसार अंतरसस्यन घास एवं दलहनी फसल की तुलना में अधिक गुणवत्तायुक्त चारा उत्पादित किया।

मृदा संरक्षण

विषम जलवायु परिस्थितियों एवं विरल वनस्पति के कारण शुष्क क्षेत्रों में मृदा अपरदन एक गंभीर समस्या है। घास-दलहन अंतरसस्यन को अपनाकर, मृदा अपरदन को काफी हद तक रोका जा सकता है। घास एवं दलहनी फसलों की पंक्तियां, इस स्थिति में एक बहुत अच्छे वानस्पतिक अवरोधक का काम करती है। इसके कारण वर्षा जल बहाव की गति को कम करने में सफलता मिलती है, जोकि मृदा अपरदन को रोकने में सहायक होता है। इसके अलावा, अंतरसस्यन जमीन पर वानस्पतिक आवरण बढ़ाने में सहायक होता है, जिससे मृदा संरक्षण एवं कार्बनिक पदार्थ में बढ़ोतरी होती है। कार्बनिक पदार्थ की मात्रा मृदा में बढ़ने से भूमि के भौतिक, रासायनिक, जैविक और मृदा उर्वरता में सुधार होता है, जोकि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अंततः मृदा अपरदन की समस्या को काफी कम कर करने तथा पूरी तरह से रोकने में मददगार साबित होता है।

भाकृअनुप की लोकप्रिय पत्रिका
'खेती' अप्रैल, 2019 अंक के प्रमुख आकर्षण
गन्ना विशेषांक

- तापमान बदलाव से गन्ना खेती का बचाव
- गन्ने का दुश्मन है तना छिद्रक
- उच्च चीनी परता के लिए गन्ने का रखरखाव
- गन्ने के अवशेषों का प्रबंधन
- गन्ने की पेड़ी में पलवार बिछाकर जल बचत
- गन्ने में जैव उर्वरक
- गन्ना प्रश्नोत्तरी
- गन्ने की खेती में उपयोगी तकनीक और उपकरण
- गन्ने के साथ पपीते की खेती दिलाएगी बम्पर मुनाफा
- ड्रिप सिंचाई प्रणाली से गन्ना उत्पादन
- गन्ने की खेती में कब क्या करें
- गन्ने की खेती का इतिहास

संपर्क सूत्र: व्यवसाय प्रबंधक, भाकृअनुप-कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, कैब-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012 (दूरभाष: 25843657)

मार्च के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह, विनोद कुमार सिंह, कपिला शेखावत, प्रवीण कुमार उपाध्याय और **एस.एस. राठौर**
सस्य विज्ञान संभाग
भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली–110012

“इस माह कृषि कार्यों की दृष्टि से रबी फसलें पकने की अवस्था में आने लगती हैं। समय पर बोई गयी राई–सरसों की कटाई इसके प्रथम पखवाड़े में होने लगती है। इसी प्रकार चना, मसूर, मटर और आलू की फसलें भी कटाई के लिए तैयार होने लगती हैं। गेहूं में भी दाने का पूर्ण भराव होने लगता है और दाना सख्त होने लगता है। बरसीम से बीज उत्पादन करना है तो इसमें भी विशेष सावधानियां रखनी पड़ेंगी, जिससे अधिकतम उत्पादकता के साथ–साथ, उच्च गुणवत्ता वाला बीज प्राप्त हो सके। इस समय बसंतकालीन फसलों की बुआई की तैयारी शुरू हो जाती है। बसंतकालीन मक्का, गन्ना के साथ ही ग्रीष्मकालीन दलहनी फसलों की बुआई के लिए यह उपयुक्त समय होता है। इस समय हरे चारे की कमी बहुतायत में देखी जाती है इसलिए खाली हुए खेतों में ग्रीष्मकालीन चारे की फसलें जैसे मक्का, बाजरा, ज्वार की बुआई कर हरे चारे की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सकती है। सब्जी, फलदार पेड़ों और पुष्प व सुगंध वाले पौधों से भरपूर पैदावार लेने के लिए सस्य कृषि क्रियाओं की आवश्यकता होती है। इस लेख में इन सभी बातों पर विस्तृत जानकारी दी गई है।”

गेहूं की नई प्रजाति–एच.डी.सी.एस.डब्ल्यू.–18

गेहूं की नई प्रजाति–एच.डी.–3226

गेहूं और जौ की फसल में देखभाल

- गेहूं की फसल फूल निकलने से लेकर दाने बनने की अवस्था में है। इस समय सिंचाई अवश्य करें, नहीं तो पैदावार में भारी गिरावट आ सकती है। हल्की सिंचाई 20 दिनों के अंतर पर करें। इससे गर्म हवाओं का दाने बनने पर बुरा असर कम होगा तथा तेज हवाओं से फसल गिरेगी भी नहीं। गेहूं में बुआई के अनुसार पांचवीं सिंचाई दूधिया अवस्था यानी बुआई के 100 से 105 दिनों पर और अंतिम सिंचाई दाना भरते समय बुआई के 115–120 दिनों बाद करें। पछेती गेहूं की बुआई मध्य दिसम्बर के आसपास की गयी हो तो उनमें चौथी सिंचाई बाली निकलने की अवस्था और पांचवीं सिंचाई दूधिया अवस्था पर करें। तेज हवा चलने की स्थिति में सिंचाई न करें अथवा रात में करें, क्योंकि फसल गिरने का डर रहता है। असिंचित क्षेत्रों में गेहूं की कटाई और मड़ाई का कार्य करें।
- गेहूं की फसल में गेरुई व झुलसा जैसे रोग दिखाई दें तो मैन्कोजेब दवा के 2 फीसदी वाले घोल का छिड़काव करें या स्फोटों के दिखाई पड़ने पर 0.1 प्रतिशत प्रोपिकोनेजोल का एक या दो बार पत्तियों पर छिड़काव करें। अनावृत कंडुआ की रोगग्रस्त बाली दिखाई देते ही सावधानीपूर्वक उसे निकालकर जला दें। कंडुआ रोग की रोकथाम के लिए गेहूं के बीज को बीटावैक्स 2.5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज या कार्बेंडाजिम नामक फफूंदनामक दवा से 2.5–3.0 ग्राम/कि.ग्रा. बीज उपचारित करके बुआई करनी चाहिए।
- मार्च में खुली क्यारी में गेहूं की बालियां काले पाउडर में बदल जाती हैं। करनाल बंट में पौधे के दाने पर काले रंग का पाउडर बन जाता है, जिनमें मछली जैसी गंध आती है। इस रोग के नियंत्रण के लिए खेत में कम से कम पांच वर्षों तक फसलचक्र अपनायें। रोगग्रसित बालियों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए एवं साफ व स्वस्थ बीजों का चयन किया जाए। बीटावैक्स, औरियोफन्जिन, थीरम, जीनेव, ऑक्सीकार्बोक्सिन 2.5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें। रासायनिक जैसे प्रोपिकोनेजोल (0.1 प्रतिशत), ट्राइएडिमेफोन (0.2 प्रतिशत), कार्बेंडाजिम (0.1 प्रतिशत), मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत) का पुष्प निकलने की अवस्था में या प्रथम छिड़काव फरवरी के प्रथम सप्ताह में और दूसरा छिड़काव फरवरी के दूसरे सप्ताह में करें। काला सिट्टा रोग में दानों का सिरा गहरा भूरा या काला हो जाता है। इसकी रोकथाम फूल आने से लेकर फसल पकने तक 800 ग्राम डाईथेन जेड 78 (जीनेव) या डाईथेन

एम. 47 (मैंकोजेब) को 250 लीटर पानी में घोलकर 10-15 दिनों के अंतर पर छिड़काव करें। ममनी व टुंडू सूत्रकृमि रोग हैं। इनमें पौधों के तनों का आधार फूल जाता है। रोगग्रस्त बालियां छोटी तथा मोटी हो जाती हैं। स्वस्थ दानों की जगह काले रंग की ममनियां बन जाती हैं जिनमें हजारों की संख्या में सूत्रकृमि होते हैं। पत्तों व बालियों पर पीले रंग का चिपचिपा लसदार पदार्थ दिखाई देता है। बालियां प्राय: मुड़ी हुई तथा बांझ होती हैं। रोकथाम सिर्फ बीजाई से पहले ही हो सकती है। बोने से पहले ममनी रहित साफ बीज को पानी में अच्छी तरह धोकर बुआई करें।

- रस चूसने वाले कीट जैसे चेंपा व तेला भी गेहूं की पत्तियों व बालियों से रस चूसते हैं। 12 प्रतिशत बालियों या ऊपर के पत्तों पर 10-12 चेंपा का समूह नजर आये तो रोकथाम के लिए इमिडाक्लोप्रिड 200 एसएल अथवा 20 ग्राम सक्रिय तत्व का छिड़काव खेत के चारों तरफ दो मीटर बार्डर पर करें। शुरू में पूरे खेत में उपचार की आवश्यकता नहीं होती। अधिक प्रकोप होने पर इस कीटनाशी का प्रयोग पूरे खेत में करें। किन्हीं दो छिड़काव के बीच 15-20 दिनों का अंतर अवश्य रखें। माइट का प्रकोप असिंचित खेती में अधिक होता है। इसके प्रकोप से पत्तियां शिखर से पीली होने लगती हैं। माइट का प्रकोप निचली पत्तियों पर अधिक होता है। इसकी रोकथाम के लिए फॉस्फामिडान 2 मि.ली./प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।
- चूहों का प्रकोप गेहूं के खेत में होने पर जिंक फॉस्फाइड से बने चारे अथवा एल्यूमिनियम फॉस्फाइड की टिकिया का प्रयोग करें।
- पछेती जौ की बुआई में तीसरी व अंतिम सिंचाई दूधिया अवस्था में बुआई के 95-100 दिनों बाद करें। जौ की फसल को पकने के तुरंत बाद ही काट लेना चाहिए, जिससे फसल गिरने एवं दाने झड़ने से नुकसान कम हो। जौ का दाना हवा से नमी सोखता है अत: सही स्थान पर भंडारण करें।
- **दीमक:** यह बुआई से कटाई तक नुकसान करती है। हल्की भूमि में कम नमी और अधिक तापमान की अवस्थाओं में आक्रमण और भी ज्यादा होता है। रोकथाम के लिए एक क्विंटल बीज को 600 मि.ली. क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. से उपचारित करें। दवाई को पानी में मिलाकर 12.5 लीटर घोल बना लें। बीज को फर्श पर बिछाकर उस पर घोल छिड़कें तथा अच्छी तरह पूरे बीज में मिला दें। एक रात बीज सूखने के बाद उसकी बुआई करें अथवा 2 लीटर/हैक्टर की दर से क्लोरोपायरीफॉस बुआई से पहले खेत में सिंचाई के साथ डाल दें।
- **माल्या रोग:** यह रोग दाने में निमेटोड के कारण लगता है। बौने, पीले और सूखे पौधे इस रोग के आम लक्षण हैं। जड़ों में भी परिवर्तन दिखाई देने लगता है। रोगी जड़ें झाड़ीनुमा एवं अधिक फैलाव वाली हो जाती हैं। उन पर कहीं-कहीं उभार नजर आने लगता है। विभिन्न अवस्थाओं में रोग वाले खेत में से निमेटोड के कारण फसल की बढ़ोतरी पर बुरा प्रभाव पड़ता है। बालियां ठीक नहीं बनती व दाने अच्छी तरह नहीं बन पाते हैं। निमेटोड के नियंत्रण के लिए एक या दो साल के लिए चना, तोरिया, सरसों, गाजर, धनिया, मेथी और जौ की रोगरोधी किस्में ही लगाएं। मई और जून के महीने में खेत में 10-15 दिनों के अंतर पर 2-3 जुताइयां करें। निमेटोड के अधिक तथा एक समान आक्रमण की हालत में एल्डीकार्ब 5 कि.ग्रा. या 30 कि.ग्रा. कार्बोफ्यूरॉन/हैक्टर की दर से बुआई के समय खाद में मिलाकर डाल दें।

जायद मक्का एवं बाजरा

जायद ऋतु में मक्का की उन प्रजातियों को लगाते हैं जो शीघ्र पक जाती हैं जैसे-पी. एम.एच.-7, पी.एम.एच.-8, पी.एम.एच.-10, कंचन, गौरव, सूर्या, तरुण, नवीन, अमर, आजाद, उत्तम, किसान, विजय व श्वेता और हरे भुट्टे लेने के लिए पी.ई.एम.एच.-2, पी. ई.एम.एच.-3 तथा बेबी कॉर्न के लिए संस्तुत प्रजातियां पूसा संकर-1, पूसा संकर-2, पूसा संकर-3, एच.एम-4, वी.एल.-42, वी.एल. -78 व प्रकाश आदि प्रमुख हैं। मक्का की खेती के लिए बुआई के समय 18-30^0 सेल्सियस तापमान होना आवश्यक है। इसकी

जायद मक्का

अच्छी उपज हेतु बलुई दोमट या दोमट भूमि उपयुक्त होती है। जायद में फरवरी के अंत तक बुआई कर लेनी चाहिए, जिससे कि हमारी पैदावार पर कोई कुप्रभाव न पड़ सके। बुआई से पूर्व 1 कि.ग्रा. मक्के के बीज को 2.5 ग्राम थीरम या 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम से शोधित करना अति आवश्यक है। सामान्य मक्का के लिए 18-20 कि.ग्रा./हैक्टर तथा संकर मक्का की बीज दर 12-15 कि.ग्रा./हैक्टर प्रयोग करनी चाहिए। मक्का की बुआई हल के पीछे 3 से 4 सें.मी. की गहराई पर करें तथा पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 30 सें.मी. रखनी चाहिए।

- मक्का की अच्छी उपज लेने के लिए संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करना आवश्यक है। मक्का की फसल के लिए खाद का प्रयोग खेत की तैयारी के समय किया जाता है, उर्वरक में 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 60 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर प्रयोग करते हैं। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा खेत तैयार करते समय प्रयोग करनी चाहिए। शेष नाइट्रोजन की आधी मात्रा को दो बार में खड़ी फसल में टॉप ड्रेसिंग के रूप में प्रयोग करें। आधी मात्रा बुआई के 25-30 दिनों बाद फूल आने के समय नाइट्रोजन की शेष मात्रा का प्रयोग करना चाहिए।
- मक्का की फसल में कम से कम दो निराई-गुड़ाई करें। पहली निराई-गुड़ाई बुआई के 15-20 दिनों बाद तथा दूसरी बुआई के 30-35 दिनों बाद करें। खरपतवार नियंत्रण के लिए बुआई

बाजरे की उन्नत किस्में

बाजरे की खेती गर्म जलवायु तथा 50-60 सें.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी तरह से की जा सकती है। इस फसल के लिए सबसे उपयुक्त तापमान 32-37^0 सेल्सियस होना आवश्यक है। बाजरे के लिए अधिक उपजाऊ भूमि की भी आवश्यकता नहीं होती है। इसके लिए बलुई दोमट मृदा अत्यंत उपयुक्त होती है। बाजरे की फसल जल निकास वाली सभी तरह की भूमि में उगाई जा सकती है। बाजरे की संकर किस्में जैसे-टीजी 37, आर-8808, आर-9251, आईसीजीएस-1, आईसीजीएस-44, डीएच-86, एम.-52, पी.बी. 172, पी.बी. -180, जी.एच.बी.-526, जी.एच.बी.-558, जी.एच.बी. -183, प्रोएग्रो. 9555, प्रोएग्रो. 9444, 86 एम. 64, नंदी 72, नंदी 70 एवं नंदी 64 तथा बाजरे की संकुल प्रजातियां जैसे-पूसा कम्पोजिट-383, राज.-171, आई. आई.सी.एम.वी.-221 व सी.टी.पी.-8203 प्रमुख हैं। मोटेतौर पर बाजरे की बुआई का सही वक्त मध्य फरवरी से लेकर जून-जुलाई तक है। जहां तक बीजों की मात्रा की बात है, तो 5-7 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर की दर से सही रहता है। बुआई के वक्त कतारों की आपसी दूरी 25 सें.मी. होनी चाहिए व बीजों को 2 सें.मी. से ज्यादा गहरा नहीं बोना चाहिए।

के 2-3 दिनों के अंदर एट्राजीन 2.5 कि.ग्रा. या पेन्डीमेथिलिन 3.33 लीटर में से किसी एक खरपतवारनाशी का प्रयोग 600 लीटर पानी में घोलकर/हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

- सिंचित क्षेत्र के लिए 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40-50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर एवं बारानी क्षेत्रों के लिए 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 30 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग किया जा सकता है। बुआई के समय नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा लगभग 3-4 सें.मी. की गहराई पर डालनी चाहिए। नाइट्रोजन की बची हुई मात्रा अंकुरण से 4-5 सप्ताह बाद खेत में बिखेरकर मिट्टी में अच्छी तरह मिला देनी चाहिए।
- अच्छी पैदावार के लिए, समय से खरपतवार नियंत्रण अति आवश्यक हैं अन्यथा उपज में 50 प्रतिशत तक की कमी हो सकती है। बुआई से 30 दिनों तक खेत को खरपतवारमुक्त रखना आवश्यक है। खरपतवार नियंत्रण के लिए पहली निराई खुरपी द्वारा बुआई के 15 दिनों बाद करनी चाहिए। इसे 15 दिनों के अंतराल पर दोहराना चाहिए। यदि फसल की बुआई मेड़ पर की गयी है तो खरपतवार नियंत्रण ट्रैक्टर एवं रिज मेकर द्वारा भी किया जा सकता है। खरपतवारनाशक एट्राजीन 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर की दर से बुआई के तुरन्त बाद अथवा 1-2 दिनों बाद प्रयोग करने से खरपतवार नियंत्रण किया जा सकता है। एट्राजीन 0.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व को 800 लीटर पानी में घोलकर भी छिड़काव किया जा सकता है।
- अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए खेत में पर्याप्त नमी का होना आवश्यक है। पौधों में फुटाव होते समय, बालियां निकलते समय तथा दाना बनते समय नमी की कमी नहीं होनी चाहिए। बालियां निकलते समय नमी का विशेष ध्यान रखना चाहिए। ग्रीष्मकालीन बाजरे में 8-10 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए। इस प्रकार 9-10 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ सकती है।

चना, मसूर और मटर की फसल

- दलहनी फसलें भी इस समय पककर कटाई के लिए तैयार होने लगती हैं। चने की फसल में जब पत्ते गिरने लगते हैं, तने के साथ-साथ फलियां भी भूरे से हल्के पीले रंग में बदलने लगती हैं और सबसे जरुरी बात दाने सख्त और अंदर से खड़खड़ की आवाज देने लगते हैं, इसके साथ ही दानों में नमी 15 प्रतिशत के लगभग होती है उस समय फसल की कटाई हंसिया या शक्ति चालित यंत्रों से करते हैं। कटाई के करीब 3-4 दिनों तक फसल को धूप में सुखाते हैं। इसके बाद मड़ाई (थ्रेसिंग) हाथ से पीटकर, बैलों के द्वारा या थ्रेसर से कर सकते हैं या कम्बाइन के द्वारा कटाई एवं मड़ाई का कार्य पूर्ण करें। दानों को तब तक सुखाया जाता है, जब तक कि उसमें 10 से 12 प्रतिशत नमी रहे। देरी से बोई गई सिंचित चने की फसल में यदि आवश्यकता हो तो दूसरी सिंचाई भी बुआई के 100 दिनों बाद की जा सकती है।

चना

- चना फलीछेदक (हेलिकोवर्पा आर्मीजेरा) कीट चने में लगने वाले कीटों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है तथा पूरे भारत में पाया जाता है। चना फलीछेदक की प्रथम अवस्था की सूंडियां कोमल पत्तियों को खुरच-खुरच कर खाती हैं। यह सूंडी 5-6 बार केंचुल उतारती है और धीरे-धीरे बड़ी होती जाती है। तीसरी अवस्था की सूंडियां चने की फलियों में मुंह घुसाकर दाना खाती हैं। दाना खाने के बाद सूंडी मुंह निकाल लेती है और फिर दूसरी फली में छेदकर दाना खाती है। इसके चलते फलियों में गोल-गोल छेद बन जाते हैं। एक सूंडी अपने जीवनकाल में 30-35 दाने खाती है। इस प्रकार यह कीट चने की फसल को बहुत हानि पहुंचाता है। चने में

फलीछेदक के नियंत्रण के लिए 125 मि.ली. साइपरैंथरीन (25 ई.सी.) या 1000 मि.ली. कार्बोरिल (50 डब्ल्यू. पी.) या मोनोक्रोटोफॉस (36 ई.सी.) 750 मि.ली. या क्यूनालफॉस (25 ई.सी.)1.5 लीटर या इंडॉक्साकार्ब 0.02 प्रतिशत घोल (1 मि.ली. प्रति लीटर पानी) को 600-800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से पहला छिड़काव अवश्य करें या चने की फसल में फलीछेदक कीट के नियंत्रण के लिए एन.पी.वी. (न्यूक्लियर पॉलीहेड्रोसिस वायरस) 250-350 शिशु समतुल्य 600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। चने में 5 प्रतिशत एन.एस.के.ई. या 3 प्रतिशत नीम ऑयल तथा आवश्यकतानुसार कीटनाशी का प्रयोग करें।

- मार्च में हरी मटर कम होने के साथ-साथ दाने वाली मटर की फसल तैयार हो जाती है। अगर मटर की फलियां सूख कर पीली पड़ जाएं, तो उन की कटाई कर लेनी चाहिए। गहाई करने के बाद मटर के दानों को इतना सुखाएं कि सिर्फ 8 फीसदी नमी ही बचे। मटर की फसल प्राय: 100-120 क्विंटल प्रति हैक्टर (हरी फलियां) एवं 15-20 क्विंटल प्रति हैक्टर दानों की पैदावार दे देती है। समय से कटाई भी बीजों को बिखराव से बचाती है। जब मटर की फसल पूरी तरह से पक जाए तो उसे धूप में पर्याप्त सुखाने के बाद ही मड़ाई करें।
- मसूर में फली बनने की अवस्था में हल्की सिंचाई करें। जब फलियां पक जाएं (70-80 प्रतिशत फलियां सूखने जैसी अवस्था में आ जाएं) तो फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। फसल को खेत में सुखाकर दाने अलग कर लेने चाहिए। पकने के बाद फसल को अधिक समय तक खेत में खड़ी न रहने दें। देर से कटाई करने पर फलियों से दाने छिटकने के कारण उपज की हानि होती है।

मसूर

राई-सरसों, अलसी और सूरजमुखी की फसल

- माहूं कीट के शिशु एवं प्रौढ़ पौधों के कोमल तनों, पत्तियों, फूलों एवं नई फलियों से रस चूसकर उसे कमजोर एवं क्षतिग्रस्त करते हैं। साथ ही रस चूसते समय पत्तियों पर उत्सर्जित शहद सदृश पदार्थ, कवक वृद्धि के लिए अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न करते हैं, जोकि पौधे को भोज्य पदार्थ बनाने की प्रक्रिया में अवरोध करता है। इससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बाधित हो जाती है। इस कीट की रोकथाम के लिए क्लोरोपायरीफॉस (25 ई.सी.) 1.0 लीटर या मिथाइल ओडेमेटान

सरसों

(25 ई.सी.) 1.0 लीटर प्रति हैक्टर की दर से 600 से 800 लीटर पानी में अच्छी तरह मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। माहूं के नियंत्रण के लिए 400 मि.ली. मेटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. या रोगोर 30 ई.सी. को 400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

- जब 75 प्रतिशत फलियां सुनहरे रंग की हो जाएं तो सरसों की फसल की कटाई एवं मड़ाई करके दाने अलग कर लेने चाहिए। देर से कटाई करने पर दानों के झड़ने की आशंका रहती है। कटाई की हुई सरसों को खलिहान में अधिक समय तक नहीं रखें, अन्यथा पेन्टेड बग कीट दानों का तेल चूस लेगा, जिससे हानि होने की आशंका रहेगी। यदि किन्हीं कारणों से खलिहान में काटी गई फसल रखना जरुरी हो तो खलिहान की भूमि पर मिथाइल पेराथियान 2 प्रतिशत पाउडर का छिड़काव पहले ही कर दें। दानों को अच्छी प्रकार से सुखाकर ही भंडारण करना चाहिए।
- सूरजमुखी की संकर किस्में जैसे-एच.एस.एफ.एच.-848, एम.एस.एफ.एच.-17, मारुति, के.वी.एस.एच.-41, के.वी.एस.एच.-42, के.वी.एस.एच.-44 व वी.एस.एच.-53 के.वी.एस.एच.-44, डी.आर.एस.एच.-1, पी.एस.एफ.एच.-118, पी.एस..एफ.एच.-569, सूर्यमुखी, एस.एच.-332, के.वी.एस.एच.-1 तथा सूरजमुखी की संकुल किस्में जैसे-डी.आर.एस.एफ.-108, को.-5, टी.ए.एस.एफ.-82, एल.एस.एफ.-8, फुले रविराज,सूर्य एवं माडर्न उपयुक्त हैं। सूरजमुखी की बुआई 15 मार्च तक पूरी कर लें। संकर प्रजाति का बीज 5-6 कि.ग्रा./हैक्टर तथा संकुल प्रजाति का स्वस्थ बीज 12-15 कि.ग्रा./हैक्टर पर्याप्त होता है। बोने से पहले बीज को कार्बेन्डाजिम की 2 ग्राम मात्रा अथवा थीरम की 2.5 ग्राम मात्रा से बीज उपचार अवश्य करें।
- सामान्यत: सूरजमुखी की फसल

अलसी

अलसी की फसल की कटाई उस समय पर करें जब पौधे सुनहरे पीले रंग के होने लगते हैं और कैप्सूल भूरे रंग के साथ सूखने और खुलने लगते हैं।

सूरजमुखी

में उर्वरक का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना चाहिए। मृदा परीक्षण न होने की दशा में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40 कि.ग्रा. पोटाश एवं 200 कि.ग्रा. जिप्सम प्रति हैक्टर की दर से बुआई के समय कूंड़ों में प्रयोग करें। सूरजमुखी की बुआई के 15-20 दिनों बाद खेत से फालतू पौधों को निकालकर पौधे से पौधे की दूरी 20 सें.मी. कर लें और उसके पश्चात सिंचाई करें।

- सूरजमुखी की फसल में यदि कटुआ सूंडी या हरे रंग की सूंडी का आक्रमण हो तो 50 मि.ली. सायपरेंथ्रिन 25 ई.सी. या 150 मि.ली. डैकामेथ्रिन 2.8 ई.सी. या 80 मि.ली. फैनवालरेट 20 ई.सी. को 100-150 लीटर पानी में मिलाकर/एकड़ छिड़काव करें। सूरजमुखी व उड़द की अंतर्वर्ती खेती के लिए सूरजमुखी की दो पंक्तियों के बीच उड़द की दो से तीन पंक्तियां लेना उत्तम रहता है।

ग्रीष्मकालीन मूंग एवं उड़द की फसल

- मूंग व उड़द की खेती उत्तर भारत की बलुई-दोमट मिट्टी से लेकर मध्य भारत की लाल एवं काली मिट्टी में भलीभांति की जा सकती है। इसकी खेती के लिए अच्छे जल निकास वाली बलुई-दोमट मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है। बुआई से पहले खेत में उचित नमी होना अति आवश्यक है। बारीक, भुरभुरा व चूर्णित खेत मूंग व उड़द की खेती के लिए अच्छा माना जाता है। खेत की 2-3 बार जुताई/हैरोइंग पर्याप्त होती है। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा अवश्य लगायें, जिससे भूमि की नमी संरक्षित रहे। बुआई का उपयुक्त समय वायुमंडलीय तापमान, मृदा की नमी व फसल प्रणाली पर निर्भर करता है। ग्रीष्मकालीन/बसंत मूंग की बुआई का उपयुक्त समय 10 मार्च से 10 अप्रैल तक है। उड़द की बुआई का उपयुक्त समय 15 फरवरी से 15 मार्च तक है। सरसों, गेहूं, आलू की कटाई के उपरांत 70 से 80 दिनों में पकने वाली प्रजातियों की बुआई की जा सकती है। किसी कारणवश खेत समय पर तैयार न हो तो वहां पर मूंग एवं उड़द की 60-65 दिनों में पकने वाली किस्मों की बुआई 15 अप्रैल के बाद कर सकते हैं। यदि किसान मूंग एवं उड़द की बुआई देर से करते हैं तो नमी की कमी से फसल की धीमी वृद्धि, अगली फसल की बुआई में देरी एवं रोगों व कीटों का अधिक प्रकोप की समस्यायें आ सकती हैं।

ग्रीष्मकालीन मूंग-पूसा विशाल

- मूंग व उड़द की अच्छी पैदावार तथा उत्तम गुणवत्तायुक्त उत्पादन लेने के लिए अच्छी प्रजाति का चयन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसीलिए पानी के साधन, फसलचक्र व बाजार की मांग की स्थिति को ध्यान में रखकर उपयुक्त प्रजातियों का चुनाव करें। मूंग की उन्नत प्रजातियां जैसे-पूसा विशाल, पूसा 9531, पूसा रत्ना, पूसा 672, सम्राट, मेहा, आर.एम.जी. 268, आर.एम.जी., 492 पंत मूंग 4,पंत मूंग 5, पंत मूंग 6, एस.एम.एल. 668, एस.एम.एल. 832, एच.यू.एम. 1, एच.यू.एम. 2,एच.यू.एम. 6, एच.यू.एम. 12, एच.यू.एम. 16, गंगा 8, एम.एल. 818, टी.एम.बी. 37, बसंती, आई.पी.एम. 02-14, आई.पी.एम. 02-14 एवं उड़द की उन्नत प्रजातियां जैसे-पंत उड़द 31, पंत उड़द 40, आई.पी.यू. 02-43,डब्ल्यू.बी.यू. 108, शेखर 1, उत्तरा, आजाद उड़द 1, शेखर 2, शेखर 3, माश 1008, माश 479, माश 391 व सुजाता प्रमुख हैं। बीजदर का निर्धारण मुख्यत: बीज के आकार, नमी की स्थिति, बुआई का समय, पौधों की पैदावार तथा उत्पादन तकनीक पर निर्भर होता है। ग्रीष्मकालीन मूंग एवं उड़द की बुआई के लिए 20-25 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। ग्रीष्मकालीन मूंग एवं उड़द की फसल में पंक्तियों से पंक्तियों की दूरी 30 सें.मी. होनी चाहिए। बीज की बुआई कूंड़ों में या सीडड्रिल से पंक्तियों में की जानी चाहिए तथा बीजों को 4-5 सें.मी. गहराई में बोना चाहिए।

ग्रीष्मकालीन उड़द-शेखर-2

- मृदा एवं बीज जनित कई कवक एवं जीवाणुजनित रोग होते हैं, जो मृदा अंकुरण होते समय तथा अंकुरण होने के बाद बीजों को काफी क्षति पहुंचाते हैं। बीजों के अच्छे अंकुरण तथा स्वस्थ पौधों की पर्याप्त संख्या हेतु कवकनाशी से बीज उपचार के लिए प्रति कि.ग्रा. बीज को 2 से 2.5 ग्राम थीरम तथा 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम से उपचार करने के बाद राइजोबियम कल्चर से बीजोपचार करना चाहिए। बुआई के समय बीज डालने से पहले सल्फर धूल का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। इसी प्रकार फॉस्फेट घुलनशील बैक्टीरिया (पीएसबी) से बीज का शोधन करना भी लाभदायक होता है।
- उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण की संस्तुतियों के आधार पर किया जाना चाहिए। मूंग की फसल के लिए 10-15 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 45-50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 50 कि.ग्रा. पोटाश एवं 20-25 कि.ग्रा. सल्फर/हैक्टर की दर से बुआई के समय कूंड़ों में देना चाहिए। कुछ क्षेत्रों में जस्ता या जिंक की कमी की अवस्था में 20 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए। उड़द की फसल के लिए नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं गंधक (सल्फर) क्रमश: 15, 45 एवं 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से बुआई के समय कूंड़ों में देनी चाहिए। 2 प्रतिशत यूरिया के घोल का पर्णीय छिड़काव यदि फली बनने की अवस्था में किया जाए तो उपज में निश्चित रूप से वृद्धि होती है।
- बुआई के प्रारंभिक 4-5 सप्ताह तक खरपतवार की समस्या अधिक रहती है। पहली सिंचाई के बाद निराई करने से खरपतवार नष्ट होने के साथ-साथ भूमि में वायु का संचार भी होता है। खरपतवारों के रासायनिक नियंत्रण

हेतु 2.5-3.0 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर बुआई के 2 से 3 दिनों के अंदर अंकुरण के पूर्व छिड़काव करने से 4 से 6 सप्ताह तक खरपतवार नहीं निकलते हैं। चौड़ी पत्ती तथा घास वाले खरपतवार को रासायनिक विधि से नष्ट करने के लिए एलाक्लोर की 4 लीटर या फ्लूक्लोरालिन (45 ई.सी.) नामक रसायन की 2.22 लीटर मात्रा को 800 लीटर पानी में मिलाकर बुआई के तुरन्त बाद या अंकुरण से पहले छिड़काव कर देना चाहिए। अत: बुआई के 15-20 दिनों के अंदर निराई-गुड़ाई कर खरपतवारों को नष्ट कर देना चाहिए।

ग्रीष्मकालीन मूंगफली की फसल

- उष्ण कटिबंधीय पौधा होने के कारण इसे लंबे समय तथा गर्म मौसम की आवश्यकता पड़ती है। अंकुरण और प्रारंभिक वृद्धि के लिए $14-15^0$ सेल्सियस तापमान का होना आवश्यक है। फसल के जीवनकाल में पर्याप्त सूर्यप्रकाश, उच्च तापमान तथा सामान्य वर्षा का होना अति उत्तम रहता है। फसल वृद्धि के लिए सर्वोत्तम तापमान $70-80^0$ फारेनहाईट होता है। मूंगफली की खेती उन सभी स्थानों पर जहां 60-130 मीटर वार्षिक वर्षा होती है, की जाती है। बहुत अधिक वर्षा भी मूंगफली की खेती के लिए हानिकारक होती है। फसल की कटाई के समय स्वच्छ और तेज धूप होना अति लाभदायक होता है। इस अवस्था में उत्पाद भलीभांति सूख जाता है तथा उत्पाद के गुण भी अच्छे होते हैं।
- देश के विभिन्न भागों में मूंगफली की खेती बलुई, बलुई दोमट, दोमट और काली मिट्टी में सफलतापूर्वक की जाती है। बलुई दोमट भूमि जिसका पी-एच मान 5.5-7.0 के मध्य हो, मूंगफली के लिए सबसे उत्तम होती है। मूंगफली की अच्छी उपज के लिए भूमि हल्की होनी चाहिए। जीवांश पदार्थ पर्याप्त मात्रा में होने चाहिए। भारी भूमि की अपेक्षा हल्की भूमि की मूंगफली का रंग अच्छा होता है। छिलका पतला होता है और अधिक उपज देती है। जायद में बुआई मार्च

ग्रीष्मकालीन मूंगफली

गन्ने की फसल में देखभाल

- गन्ने की बुआई 15-20 मार्च तक पूरी कर लें। तीन आंख वाले गन्ने के टुकड़ों को 5 मिनट तक 250 ग्राम एरिटान के 100 लीटर पानी के घोल से उपचारित करें। गन्ने की बुआई 75-90 सें.मी. की दूरी पर बनी कूंड़ों में 10 सें.मी. की गहराई पर करें। पश्चिमी तथा मध्य क्षेत्रों के लिए गन्ने की शीघ्र पकने वाली उन्नत प्रजातियां जैसे-सी.ओ.एच.-92, सी.ओ.एच.-56, सी.ओ.जे.-64, को.पंत-84211, को.शा. 92254, को.शा. 8436, को.शा. 684 एवं पूर्वी उत्तर प्रदेश के लिए को.शा. 8436 व को.शा. 687 प्रमुख हैं। पश्चिमी एवं मध्य उत्तर प्रदेश के लिए मध्य एवं देर से पकने वाली गन्ने की उन्नत प्रजातियां जैसे-सी.ओ.एच. -110, सी.ओ.एस.-767, सी.ओ.एच.-1148, सी.ओ.एच.-199, सी.ओ.एच.-99, सी.ओ.एस.-8436, सी.ओ.-7717, को.शा. 269, को.शा. 8118, को.शा. 7918, को.शा. 802 व को.शा. 767 तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश के लिए यू.पी. 12, यू.पी. 15, को.शा. 8407, को.शा. 767 एवं को.शा. 7198 प्रमुख हैं। गन्ने की बुआई के लिए एक आंख वाले टुकड़े 1,33,750, दो आंख वाले टुकड़े 60,000-65,000 हजार एवं तीन आंख वाले टुकड़े 40,000-45,000 हजार या 60-70 क्विंटल/हैक्टर बीज के लिए पर्याप्त होते हैं।

- गन्ने की फसल में मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। यदि मृदा परीक्षण न हुआ हो तो बुआई के समय प्रति हैक्टर 60-75 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 80 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 60 कि.ग्रा. पोटाश का प्रयोग करें। गन्ने की पेड़ी की फसल में प्रति हैक्टर 90 कि.ग्रा. नाइट्रोजन गन्ना काटने के बाद तथा इतनी ही मात्रा तीसरी सिंचाई के समय प्रयोग करें। गन्ने की पेड़ी से अच्छी फसल लेने के लिए खरपतवार नियंत्रण हेतु, उगने से पहले एट्राजीन 2 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व के रूप में प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। पेड़ी की फसल में 12-15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई अवश्य करते रहें।

- बसंतकालीन गन्ने के साथ अंतर्वर्ती खेती करना अत्यन्त लाभदायक रहता है। 75 सें.मी. की दूरी पर बोई गयी गन्ने की दो पंक्तियों के बीच की दूरी में उड़द की दो पंक्ति आसानी से ली जा सकती हैं। ऐसा करने पर उड़द के लिए अतिरिक्त उर्वरक की आवश्यकता नहीं पड़ती है। फसल उगते समय दीमक पोरी की आंखों को नष्ट कर देती है। कनसुए के आक्रमण से पौधों की गोभ सूख जाती है। अत: इन दोनों कीटों से फसल को बचाने के लिए बुआई के समय 2.5 लीटर क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. या 2.5 लीटर गामा बी.एच.सी. 20 ई.सी. या 600 मि.ली. फिप्रोलिन 5 एस.सी. को 600-800 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ कूंड़ों में बीज के ऊपर फव्वारे से छिड़काव करें। 150 मि.ली. इमिडाक्लोप्रिड 200 एम.एल. को 250-300 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव किया जा सकता है।

से अप्रैल तक की जा सकती है, जिससे कि फसल अच्छी पैदावार दे सके। बुआई पंक्तियों में करनी चाहिए, पंक्ति से पंक्ति और पौधे से पौधे की दूरी 25-30 × 8-10 सें.मी. रखनी चाहिए। जायद की फसल में 95-100 कि.ग्रा./हैक्टर बीज बुआई में लगता है। बोने से पहले बीज को 2 ग्राम थीरम और 1 ग्राम 50 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम के मिश्रण को 2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से शोधित करना चाहिए। इस शोधन के पांच-छह घंटे बाद बोने से पहले बीज को मूंगफली के राइजोबियम कल्चर से उपचारित कर लेना चाहिए। मूंगफली की उन्नत प्रजातियां जैसे-टीजी 37, आर-8808, आईसीजीएस-44, आईसीजीएस-1, डीएच-86, आर-9251 प्रमुख हैं। यह आलू, मटर, सब्जी मटर, एवं राई की कटाई के बाद खाली भूमि में बोयी जा सकती है।

- निराई-गुड़ाई का मूंगफली की खेती में बहुत अधिक महत्व है 15 दिनों के अंतरल पर 2-3 गुड़ाई-निराई करना लाभदायक है गुच्छेदार प्रजातियों में मिट्टी चढ़ाना लाभदायक पाया गया है। पौधों में फलियों के बनने की क्रिया प्रारंभ हो जाए तो कभी भी निराई-गुड़ाई या मिट्टी चढ़ाने की क्रिया नहीं करनी चाहिए।

चारे वाली फसलों में देखभाल

- बरसीम में 10-12 दिनों के अंतराल पर सिंचाई एवं कटाई करते रहें। जई की फसल की 50 प्रतिशत फूल आने पर अंतिम कटाई करें।

लोबिया चारा

मक्का चारा

- **लोबिया की उन्नत किस्में:** सी.-20, सी.-30.-558, बुन्देल लोबिया (आई.एम.सी.-8503), एन.पी.-3, यू.पी.सी.-5286, यू.पी.सी.-5287, यू.पी.सी.-287, एच.एफ.सी.-42-1, एफ.ओ.एस. 1, न. 10, एच.एफ.सी. 42-1, सी.एस. 88 वरशियन जायंट आदि प्रमुख हैं। 2.5 ग्राम थीरम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीज उपचारित करें। अकेले बोने के लिए 40 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। मक्का या ज्वार के साथ मिलाकर बुआई के लिए 15-20 कि.ग्रा. बीज प्रयोग करना चाहिए। इसकी खेती दोमट या बलुई और हल्की काली मिट्टी में की जाती है। भूमि का जल निकास अच्छा होना चाहिए। एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा 2-3 जुताइयां देसी हल या कल्टीवेटर से करनी चाहिए। बुआई के समय 25-30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन तथा 30-40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 15-20 कि.ग्रा. पोटाश देने के लिए इफको एन.पी.के. 120 कि.ग्रा. एवं 35 कि.ग्रा. यूरिया प्रति हैक्टर प्रयोग करना चाहिए।
- बुआई के समय चारे की फसलों में प्रति हैक्टर 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन का प्रयोग करें। बहुकटाई वाली चरी में 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन तथा मक्के में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन बुआई के 30 दिनों बाद टॉप ड्रेसिंग करें।
- इसका चारा अत्यन्त पौष्टिक होता है, जिसमें 17 से 18 प्रतिशत प्रोटीन पाई जाती है। कैल्शियम तथा फॉस्फोरस पर्याप्त मात्रा में होता है। यह अकेले अथवा गैर दलहनी फसलों जैसे ज्वार या मक्का के साथ बोई जाती है।
- ग्रीष्मकालीन मक्का चारे की उन्नत किस्में जैसे-अफ्रीकन टाल, विजय एवं किसान, देसी में टाइप-41 मुख्य किस्में हैं। संकर मक्का की किस्में गंगा-2, गंगा-7, चारे के लिए उगा सकते हैं। 50-60 कि.ग्रा./हैक्टर बीज शुद्ध फसल की बुआई के लिए पर्याप्त होता है। फलीदार चारे जैसे लोबिया के साथ इसे 2:1 के अनुपात में बोना चाहिए।
- संकर तथा संकुल किस्मों में 120 कि.ग्रा. तथा देसी प्रजातियों में 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन एवं 60 कि.ग्रा. फॉस्फेट, 60 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर की आवश्यकता होती है। इसके लिए एन.पी.के. 12:32:16 देसी प्रजातियों में 100 कि.ग्रा. एवं संकर/संकुल प्रजातियों में 190 कि.ग्रा./हैक्टर दे सकते हैं। यूरिया देसी प्रजातियों में 150 कि.ग्रा. एवं संकर-संकुल प्रजातियों में 215

बाजरा चारा

कि.ग्रा./हैक्टर की दर से दो बार में आवश्यकतानुसार दे सकते हैं। शुद्ध चारे की फसल के लिए 50-60 कि.ग्रा./हैक्टर एवं फलीदार लोबिया के साथ 3:1 के अनुपात में बुआई कर सकते हैं।

- ग्रीष्मकालीन ज्वार चारे की उन्नत किस्में जैसे-जे.एस. 20, एच.सी. 136, एच.सी. 171, एच.सी. 260, एच.सी. 260, 308 आदि 1510-2000 क्विंटल हरा चारा देती हैं। इनके 17 कि.ग्रा. बीज को 10 इंच दूर कतारों में लगाएं।
- ग्रीष्मकालीन बाजरा चारे की उन्नत किस्म के 3-4 कि.ग्रा. बीज को 12 इंच दूर कतारों में लगाएं। इससे 70-77 दिनों बाद 160 क्विंटल हरा चारा प्राप्त हो जाता है। दोनों फसलों में बीजाई के समय 1 बोरा यूरिया डालें तथा 1 महीने बाद आधा बोरा यूरिया और डाल दें। रेतीली मिट्टी में 1 बोरा सिंगल सुपर फॉस्फेट भी बीजाई के समय डालें।
- संकर हाथी घास-नेपियर बाजरा संकर-21 किस्म पूरे वर्ष हरा चारा देती है। इसे जड़ों या तनों के टुकड़ों द्वारा उगाया जाता है। इसके 20 इंच लंबे 2-3 गांठों वाले 11000 टुकड़े प्रति एकड़ लगते हैं। आधा टुकड़ा मृदा में तथा आधा हवा में रखकर 30 इंच कतारों में तथा 24 इंच पौधे में दूरी रखें। रोपाई से पहले खेत में 20 गाड़ी सड़े गोबर की खाद दें। हर कटाई के बाद 1 बोरा यूरिया डालें। गर्मियों में 10-17 दिनों के अंतर पर सिंचाई करते रहें।

मेंथा फसल की देखभाल

- मेंथा में 10-12 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहें तथा प्रति हैक्टर 40-50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की टॉप ड्रेसिंग करें।

सब्जी वाली फसलों का उत्पादन एवं प्रबंधन

- आलू के खेतों का मुआयना करें, क्योंकि मार्च तक ज्यादातर आलू की फसल तैयार हो जाती है। अगर आपके आलू भी तैयार हो चुके हों, तो उनकी खुदाई का काम खत्म करें। आलू निकालने के बाद खेत को आगामी फसल के लिए तैयार करें।

टमाटर की भरपूर उपज

टमाटर की अच्छी पैदावार के लिए तापमान का बहुत बड़ा योगदान होता है। इसके लिए तापमान 18 से 27^0 सेल्सियस के बीच उपयुक्त रहता है। फल लगने के लिए रात का आदर्श तापमान 15 से 20^0 सेल्सियस के बीच रहना चाहिए। इसके लाल रंग के निर्माण के लिए 21-24^0 सेल्सियस तापमान उपयुक्त रहता है। पोषक तत्वयुक्त दोमट मिट्टी खेती के लिए उपयुक्त रहती है। इसके लिए जल निकास की व्यवस्था जरूर होनी चाहिए। इसकी अच्छी पैदावार के लिए भूमि का पी-एच मान 6-7.5 के मध्य होना चाहिए। उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में ग्रीष्मकालीन टमाटर की रोपाई मार्च में हो जानी चाहिए। यह फसल मई के अंत या जून के प्रथम सप्ताह में तैयार हो जाती है। पहाड़ी क्षेत्रों में इसकी रोपाई का सही समय अप्रैल से जून के मध्य होता है। टमाटर की फसल में पंक्ति से पंक्ति तथा पौधे से पौधे की दूरी 45-60 × 30-45 सें.मी. रखनी चाहिए। पौध रोपाई का कार्य शाम के समय करना चाहिए।

प्याज

- टमाटर तथा बैंगन में फलीछेदक कीट के नियंत्रण हेतु कार्बोरिल 2 ग्राम प्रति लीटर घोल का छिड़काव करें।
- एक हैक्टर क्षेत्रफल के लिए नर्सरी तैयार करने हेतु संकर तथा अन्य किस्मों के लिए 200-250 एवं 350-400 ग्राम बीज पर्याप्त होते हैं। बीज उपचार थीरम या कैप्टॉन 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से करें। पौधशाला में पौध उठी हुई क्यारियों में तैयार करें। इन क्यारियों की लंबाई व चौड़ाई 3×0.6 मीटर रखनी चाहिए। बीजों की बुआई पंक्तियों में करें तथा बुआई की गहराई 1.5 से 2.0 सें.मी. रखें। बीजों को बोने के बाद मिट्टी व गोबर की खाद के मिश्रण से ढककर हजारे की सहायता से हल्की सिंचाई करनी चाहिए, जिससे कि क्यारियों में नमी बनी रहे तथा बीजों का एक समान जमाव होता है एवं 35 से 40 दिनों में पौध रोपाई योग्य हो जाती है।
- खाद व उर्वरकों का प्रयोग करने से पहले मिट्टी की जांच करवा लेनी चाहिए। मिट्टी की जांच के अनुसार उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। बुआई पूर्व 20-25 टन/हैक्टर अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद का प्रयोग करना चाहिए। नाइट्रोजन 120 कि.ग्रा., फॉस्फोरस 100 कि.ग्रा. तथा पोटेशियम 80 कि.ग्रा./हैक्टर देनी चाहिए। नाइट्रोजन की आधी मात्रा व फॉस्फोरस एवं पोटेशियम की पूरी मात्रा खेत की तैयारी के समय खेत में देनी चाहिए। नाइट्रोजन की शेष बची हुई मात्रा रोपाई के 45 दिनों बाद टॉप

बैंगन

सारणी: कद्दूवर्गीय फसलों की विभिन्न संकर व सामान्य उन्नत किस्में

फसल	संकर एवं उन्नत प्रजातियां	बीज दर (कि.ग्रा./हैक्टर)	बुआई की दूरी (सें.मी.)		बीज की गहराई (सें.मी.)
			पंक्ति से पंक्ति	पौध से पौध	
खीरा	पूसा संयोग,पूसा उदय, पूसा बरखा, पंत खीरा-1, जापानीज लोंग ग्रीन, पोइनसेट, स्वर्ण श्वेता, स्वर्ण अगेती, पंजाब-1।	2.5-3.5	150	60-70	1.0
खरबूजा	पूसा रसराज, पूसा मधुरस, पूसा सरदा, पूसा शर्बती, पूसा मधुरिमा, पंजाब संकर-1, एम. 9 व वाई. 5, हरा मधु, पंजाब सुनहरी, दुर्गापुरा मधु, लखनऊ सफेदा, काशी मधु, अर्का जीत, अर्का राजहंस।	4.0-6.0	150-200	60-90	1.0
तरबूज	अर्का ज्योति, अर्का आकाश, अर्का ऐश्वर्य, अर्का मथु, सुगर बेबी, अर्का मानिक, असायी यामातो, स्पेशल-1, उन्नत शिपर, दुर्गापुरा मीठा, दुर्गापुरा लाल।	3.5-5.0	250-350	60-120	2.0-4.0
लौकी	पूसा हाइब्रिड-2, पूसा हाइब्रिड-3, पूसा मेघदूत, पूसा मंजरी, पंत संकर लौकी-4,पूसा नवीन, पूसा समृद्धि, पूसा संतुष्टि, पूसा संदेश, पंजाब कोमल, पंजाब राउन्ड, आजाद, नूतन, राजेन्द्र, काशी गंगा,काशी बहार तथा नरेंद्र रश्मि तथा अर्का बहार।	3.0-6.0	200-300	100-150	2.5
काशीफल	पूसा संकर-1,पूसा विश्वास, पूसा विकास, काशी हरित, अर्क चंदन, सोलन बादामी एवं नरेन्द्र अमृत।	7.0-9.0	250-300	150-180	2.0-2.5
चप्पन कद्दू	पूसा अलंकार,पूसा पसंद, पैटी पैन, अर्ली मैलो, प्रोलिफिक, ऑस्ट्रेलियन ग्रीन, पंजाब चप्पन कद्दू न.-1।	6.0-7.0	90-120	45-75	1.5-2.0
कद्दू	पूसा हाइब्रिड-1, पूसा विकास, पूसा विश्वास, अर्का चन्दन, काशी हरित।				
चिकनी तोरई	पूसा सुप्रिया, पूसा चिकनी, पूसा स्नेहा,काशी दिव्या,स्वर्णप्रभा,कल्याणपुर हरी चिकनी, पंत चिकनी तोरई-1 एवं राजेंद्र नेनुआ-1।	2.5-3.6	180-250	60-120	1.5-2.0
धारीदार तोरई	पूसा नसदार, पूसा नूतन, स्वर्ण मंजरी, पंजाब सदाबहार, अर्का सुजाता अर्का सुमीत एवं सतपुतिया।	3.6-5.0	180-250	60-120	2.0-2.5
करेला	पूसा संकर-1,पूसा रसदार, पूसा पूर्वी, पूसा औषधि, पूसा हाइब्रिड-2, पूसा विशेष, पूसा दो मौसमी, अर्का हरित, कल्यानपुर सोना, कल्यानपुर बारामासी, पंजाब-14, पंत करेला-1, एन.डी.वी.-1, सोलन ग्रीन, सोलन सफेद,काशी उर्वशी एवं अर्का हरित।	4.5-6.0	150-200	60-110	2.0-2.5
टिंडा	पूसा रौनक, पजांब टिंडा, अर्का टिंडा,अर्का टिंडा, हिसार सेलेक्शन-1, बीकानेरी ग्रीन, लुधियाना स्पेशल (5-48)।	5.0-6.0	150-200	30-45	2.0
पेठा	पूसा उज्जवल, पूसा शक्ति, पूसा श्रेयाली, पूसा उर्मी, काशी धवल, काशी उज्जवल, काशी सुरभि, सी ओ-1 एवं सी ओ-2।	5.0-6.0	180-250	60-120	2.0

ड्रेसिंग के द्वारा खड़ी फसल में देनी चाहिए।

- टमाटर की अच्छी बढ़वार के लिए खरपतवार नियंत्रण अत्यधिक महत्वपूर्ण है। खरपतवार टमाटर की फसल से प्रकाश, पानी एवं पोषक तत्वों के लिए प्रतियोगिता करते हैं। रोग व कीट को शरण देते हैं, जिससे फलों की उपज को 20-80 प्रतिशत तक कम कर देते हैं। ये खरपतवार फसलों में शुरूआती 4-6 सप्ताह तक अधिक नुकसान करते हैं। पहली दो सिंचाई के बाद हल्की निराई-गुड़ाई करनी चाहिए। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए पेन्डीमिथेलीन (30 ई.सी.) 400 मि.ली. की मात्रा प्रति एकड़ को 200 लीटर पानी में रोपाई से पहले छिड़काव करें। फफूंद रोग के नियंत्रण के लिए 600-800 ग्राम इंडोफिल एम-45 को 250 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ खेत में 10-15 दिनों के अंतर पर छिड़काव करें। सफेद मक्खी, हरा तेला एवं हरा बीटल की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।
- प्याज में आवश्यकतानुसार सिंचाई एवं निराई-गुड़ाई करें तथा रोपाई के 45 दिनों बाद प्रति हैक्टर 72 कि.ग्रा. यूरिया की दूसरी टॉप ड्रेसिंग करें। प्याज की फसल को पर्पिल ब्लांच रोग से बचाव हेतु 0.2 प्रतिशत मैंकोजेब और यदि थ्रिप्स कीट लगे हों तो 0.6 मि.ली. फास्फेमिडान या 1.5 मि.ली. नुआक्रान या 0.5 मि.ली. साइपरेंथ्रिन या 75 मि.ली. फैनवेलरेट 20 ई.सी. या 175 मि.ली. डेल्टामेथ्रिन 2.8 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- इस महीने प्याज व लहसुन की तेजी से तैयार होती फसलों का ध्यान रखना चाहिए। इन्हें नरम खेत की जरूरत होती है, लिहाजा निराई-गुड़ाई करके खेत को नरम बनाएं। अगर जरुरी लगे तो खेत में यूरिया खाद डालें।
- लहसुन एवं फ्रेंचबीन की फसल में निराई-गुड़ाई व सिंचाई करें।
- ग्रीष्मकालीन बैंगन के लिए अच्छे जल निकास वाली बलुई दोमट मिट्टी खेती के लिए उपयुक्त है। भूमि का पी-एच मान 6 से 7 के बीच उपयुक्त है। ग्रीष्मकालीन बैंगन के लिए नर्सरी में बीज की बुआई करें। बैंगन की उन्नत प्रजातियां जैसे पूसा हाइब्रिड-5, पूसा हाइब्रिड-9, विजय हाइब्रिड, पूसा पर्पिल लौंग, पूसा क्लस्टर, पूसा क्रान्ति, पंजाब जामुनी गोला, नरेन्द्र बागान-1, आजाद क्रान्ति, पंत ऋतुराज, पंत सम्राट, टी-3 आदि प्रमुख हैं। ग्रीष्मकालीन बैंगन में खाद एवं उर्वरक की मात्रा इस प्रजाति, स्थानीय जलवायु व मिट्टी के प्रकार पर निर्भर करती है। अच्छी फसल के लिए 15-20 टन सड़ी गोबर की खाद खेत को तैयार करते समय रोपाई से पहले 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 60 कि.ग्रा. पोटाश व 150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की आधी मात्रा अंतिम जुताई के समय मिट्टी में मिला दें तथा बाकी आधी नाइट्रोजन की मात्रा को फूल आने के समय प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें। क्यारियों में लंबे फल वाली प्रजातियों के लिए 70-75 सें.मी. और गोल फल वाली प्रजातियों के लिए 90 सें.मी. की दूरी पर पौध रोपण करें। एक हैक्टर में फसल रोपण के लिए 250-300 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है। खरपतवार नियंत्रण के लिए पेंडीमेथेलिन या स्टाम्प नामक खरपतवारनाशी की 3 लीटर मात्रा का प्रति हैक्टर की दर से पौध रोपाई से पहले प्रयोग करें और इस बात का ध्यान रखें कि छिड़काव से पहले जमीन में नमी होनी चाहिए।

ग्रीष्मकालीन भिंडी

ग्रीष्मकालीन लोबिया

निराई व गुड़ाई द्वारा भी खेत में खरपतवार नियंत्रण करना संभव है। फसल की आवश्यकतानुसार खेत में सिंचाई का प्रबंध करें।

- **तना छेदक:** इसकी सूंडी पौधों के प्ररोह को नुकसान करती है तथा बाद में मुख्य तने में घुस जाती है। छोटे ग्रसित पौधे मुरझाकर सूख जाते हैं। बड़े पौधे मरते नहीं, ये बौने रह जाते हैं तथा इनमें फल कम लगते हैं।

कैसे करें मिर्च की देखरेख

मिर्च की खेती के लिए 15-35^0 सेल्सियस तापमान उपयुक्त माना जाता है। 40^0 सेल्सियस से अधिक तापमान होने पर इसके फूल एवं फल गिरने

लगते हैं। मिर्च की खेती सभी प्रकार की मृदा में की जा सकती है। परंतु अच्छे जल निकास वाली एवं कार्बनयुक्त बलुई-लाल दोमट मिट्टी जिसका पी-एच मान 6.0 से 7.5 हो, मिर्च की खेती के लिए सबसे उपयुक्त होती है। मिर्च की उन्नत प्रजातियां जैसे-पूसा सदाबहार, पूसा ज्वाला, अर्का लोहित, अर्का सुफल, अर्का श्वेता, अर्का हरिता, मथानिया लोंग, पंत सी-1, पंत सी-2, जी-3, जी-5, हंगेरियन वैक्स (पीले रंग वाली), जवाहर 218, आर.सी.एच.-1, एल.सी.ए.-206 आदि प्रमुख हैं।

करेला

प्ररोह व फल छेदक (शूट एंड फ्रूट बोरर)

इस कीट की सूंडी पौधे के प्ररोह व फल को हानि पहुंचाती है। ग्रसित प्ररोह मुरझाकर सूख जाते हैं। फलों में सूंडियां टेढ़ी-मेढ़ी सुरंगें बनाती हैं। फल का ग्रसित भाग काला पड़ जाता है तथा खाने लायक नहीं रहता। ग्रसित पौधों में फल देरी से लगते हैं या लगते ही नहीं। तना छेदक, प्ररोह व फल छेदक के नियंत्रण के लिए रैटून फसल न लें। इसमें फल छेदक का प्रकोप अधिक होता है। ग्रसित प्ररोहों व फलों को निकालकर भूमि में दबा दें। फल छेदक की निगरानी के लिए 5 फेरोमोन ट्रैप प्रति हैक्टर लगाएं। नीम बीज अर्क (5 प्रतिशत) या बी.टी. 1 ग्राम/लीटर या स्पिनोसेड 45 एस.सी. 1 मि.ली./4 लीटर या कार्बेरिल, 50 डब्ल्यू.पी. 2 ग्राम/लीटर या डेल्टामेथ्रिन 1 मि.ली./लीटर का फूल आने से पहले इस्तेमाल करें।

- गर्मी की फसल के लिए फरवरी-मार्च में पौधशाला में बीजों की बुआई की जाती है। एक हैक्टर पौध तैयार करने के लिए संकर और अन्य प्रजातियों के लिए 250 ग्राम और 1.0-1.5 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता है। नर्सरी के लिए 1 मीटर चौड़ी, 3 मीटर लंबी और 10 से 15 सें.मी. जमीन से उठी हुई क्यारियां तैयार करें। बीजों को बुआई से पूर्व बाविस्टिन या कैप्टॉन 2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। पौधशाला में कीटों की रोकथाम हेतु 2 ग्राम फोरेट 10 वर्गमीटर की दर से जमीन में मिलाएं या मिथाइल डिमेटोन 1 मि.ली./लीटर पानी या एसीफेट 1 मि.ली./लीटर पानी का पौधों पर छिड़काव करें।
- नर्सरी में बुआई के 4-5 सप्ताह बाद पौध रोपण के लिए तैयार हो जाती है। गर्मी की फसल में पंक्ति से पंक्ति व पौधें से पौधे की दूरी 60×30-45 सें.मी. रखें। जायद मिर्च रोपाई हेतु प्रति हैक्टर 70 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 50-60 कि.ग्रा. पोटाश भूमि में अंतिम जुताई के समय मिला दें। शेष बची हुई आधी मात्रा, 30 व 45 दिनों के बाद टॉप ड्रेंसिग के द्वारा खेत में डालें एवं तुरंत सिंचाई कर दें। मिर्च की फसल को वायरस रोग व कीटों से बचाने के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर 10-15 दिनों के अंतराल पर एक एकड़ में खड़ी फसल पर छिड़काव करें।
- फरवरी में बोयी गई भिंडी एवं लोबिया में बुआई के 30-35 दिनों बाद प्रति हैक्टर 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की टॉप ड्रेसिंग करें।
- ग्रीष्मकालीन भिंडी की उन्नत प्रजातियां जैसे-पूसा ए-5, पूसा सावनी, पूसा मखमली, बी.आर.ओ-3, बी.आर.ओ-4, उत्कल गौरव और वायरस प्रतिरोधी किस्में: पूसा ए-4, प्रभणी क्रांति, पंजाब-7, पंजाब-8, आजाद क्रांति, हिसार उन्नत, वर्षा उपहार, अर्का अनामिका आदि प्रमुख हैं। बलुई दोमट व दोमट मिट्टी जिसका पी-एच मान 6.0-6.8 हो तथा सिंचाई की सुविधा व जल निकास का अच्छा प्रबंध होना चाहिए, इसकी बुआई के लिए उत्तम है। ग्रीष्मकालीन मौसम में भिंडी की बुआई 20 फरवरी से 15 मार्च तक उपयुक्त है और बीज दर 20-22 कि.ग्रा./हैक्टर की आवश्यकता है। बीज की बुआई सीडड्रिल से या हल की सहायता से गर्मियों में 45×20 सें.मी. की दूरी पर

तोरई

टिंडा

करें एवं बीज की गहराई लगभग 4.5 सें.मी. रखें। बुआई से पहले अच्छी तरह सड़ी गोबर या कम्पोस्ट खाद लगभग 20-25 टन/हैक्टर अच्छी तरह मिट्टी में मिला दें। बुआई के समय नाइट्रोजन 40 कि.ग्रा. की आधी मात्रा, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 60 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर की दर से अंतिम जुताई के समय प्रयोग करें। आधी बची हुई नाइट्रोजन की मात्रा फसल में फूल आने की अवस्था में डालें।

- ग्रीष्मकालीन लोबिया की खेती के लिए गर्म व आर्द्र जलवायु उपयुक्त है। तापमान 24-27^0 सेल्सियस के बीच ठीक रहता है। अधिक ठंडे मौसम में पौधों की बढ़वार रुक जाती है। सभी प्रकार की मिट्टी में इसकी खेती की जा सकती है। मृदा का पी-एच मान 5.5-6.5 उचित है। भूमि में जल निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए। क्षारीय भूमि इसकी खेती के लिए उपयुक्त नहीं है। ग्रीष्मकालीन लोबिया की उन्नत प्रजातियां जैसे-पूसा कोमल (बैक्टीरियल ब्लाईट प्रतिरोधी), पूसा सुकोमल (मोजेक वायरस प्रतिरोधी), अर्का गरिमा, काशी गौरी तथा काशी कंचन, काशी उन्नति, काशी निधि, लोबिया-263 आदि प्रमुख हैं। इसकी बुआई फरवरी-मार्च में तथा बीज दर 12-20 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से पर्याप्त है। बुआई के लिए पंक्ति से पंक्ति तथा बीज से बीज की दूरी 45-60×10 सें.मी. रखी जाती है। बुआई के समय मिट्टी में बीज के जमाव हेतु पर्याप्त नमी का होना आवश्यक है। गोबर या कम्पोस्ट खाद 20-25 टन मात्रा बुआई से पहले खेत में डाल दें। लोबिया एक दलहनी फसल है, इसलिए नाइट्रोजन 20 कि.ग्रा., फॉस्फोरस 60 कि.ग्रा. तथा पोटाश 50 कि.ग्रा./हैक्टर खेत में अंतिम जुताई के समय भूमि में मिला देनी

चाहिए एवं 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की मात्रा फसल में फूल आने के समय प्रयोग करें।

- कद्दूवर्गीय सब्जियां मुख्य रूप से गर्मी नहीं सहन कर सकती, इसलिए इन्हें जायद ऋतु में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसकी खेती मुख्य रूप से अधिकतम 40^0 सेल्सियस व न्यूनतम 20^0 सेल्सियस के बीच के तापमान में ही की जा सकती है। इस वर्ग की सब्जियां सूर्य की रोशनी व तापमान के उतार-चढ़ाव से अत्यधिक प्रभावित होती हैं। रोशनी व गर्मी की अधिकता और लंबे प्रकाश काल में मादा फूलों की अपेक्षा नर फूल अधिक बनते हैं जिससे पैदावार काफी कम हो जाती है। इसके लिए तापमान $25-30^0$ सेल्सियस उचित है।
- इस वर्ग की सब्जियों के लिए दोमट या बलुई दोमट मिट्टी सबसे अधिक उपयोगी मानी जाती है। इसमें अधिक जैविक पदार्थ व अच्छे जल निकास वाली भूमि की आवश्यकता होती है। मिट्टी न ही अम्लीय और क्षारीय हो और उसका पी-एच मान 6-7 के बीच होना चाहिए। खेत की पहली जुताई किसी मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए तथा उसके बाद 2 या 3 जुताई सामान्य कर सकते हैं। खेत में पाटा लगाकर मिट्टी को भुरभुरा व खेत को समतल बना लेना चाहिए। बीज बुआई के लिए आवश्यकतानुसार नालियां बना लें। जायद ऋतु में उगाने के लिए कद्दूवर्गीय फसलों को जनवरी से मार्च तक बोया जाता है। परंतु बीजों की सीधे खेत में बुआई फरवरी-मार्च में की जाती है।

हल्दी

- खाद व उर्वरकों का प्रयोग मृदा की जांच के अनुसार करना चाहिए। कम्पोस्ट या सड़ी गोबर की खाद 200 क्विंटल प्रति हैक्टर की दर से बीज की बुआई के लगभग एक महीने पहले खेत की तैयारी के समय अच्छी प्रकार से खेत में मिला देते हैं। इसके अलावा आवश्यकतानुसार 80-100 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व इतनी ही पोटाश प्रति हैक्टर की दर से देनी चाहिए। फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा व नाइट्रोजन की आधी या एक तिहाई मात्रा आपस में मिलाकर नालियों के स्थान पर डाल कर मिट्टी में मिला दें। शेष नाइट्रोजन की मात्रा को दो हिस्सों में बांटकर बुआई के लगभग एक महीने बाद नालियों में टॉप ड्रेसिंग करें और गुड़ाई करके मिट्टी चढ़ायें। दूसरी मात्रा पौधों की बढ़वार के समय लगभग 45 से 50 दिनों बाद फूल निकलने के पहले टॉप ड्रेसिंग करें। 5 ग्राम यूरिया प्रति लीटर पानी में मिलाकर पत्तियों पर छिड़काव करना भी अत्यन्त लाभदायक होता है। बीज को बोने से पहले खेत में 40 सें.मी. चौड़ी तथा 15-20 सें.मी. गहरी नालियां बना लेते हैं।
- तोरई की फसल में खाद व उर्वरकों का प्रयोग मृदा की जांच के अनुसार करना चाहिए। कम्पोस्ट या सड़ी गोबर की खाद 200 क्विंटल प्रति हैक्टर की दर से बीज की बुआई के लगभग एक महीने पहले खेत की तैयारी के समय अच्छी प्रकार से खेत में मिला देते हैं तथा अच्छी उपज हेतु 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 50 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर खेत में अंतिम जुताई के समय भूमि में मिला देनी चाहिए।
- करेले की फसल में खाद व उर्वरकों का प्रयोग मृदा की जांच के अनुसार करना चाहिए।
- एक हैक्टर खेत के लिए 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 25-30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 25-30 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर की दर से देनी चाहिए।
- टिंडा फसल की बुआई फरवरी-मार्च में करते हैं तथा एक नाली से दूसरी नाली की दूरी फसल की बेल की बढ़वार के अनुसार 1.5-5 मीटर तक रख सकते हैं।
- चप्पन कद्दू फसल की बुआई फरवरी-मार्च में करते हैं। चप्पन कद्दू में 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 50 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर और कद्दू में 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 50 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर की दर से तत्व के रूप में देनी चाहिए।
- खरबूजे की फसल के लिए बलुई दोमट तथा जीवांशयुक्त चिकनी मिट्टी जिसमें जलधारण क्षमता अधिक हो, पी-एच मान 6.0-7.0 हो, उपयुक्त होती है। बसंत-गर्मी की इस फसल की बुआई

अदरक

फरवरी-मार्च में करते हैं तथा खरबूजे की फसल में 90 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 70 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 60 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर की दर से देनी चाहिए।

- तरबूज की खेती विभिन्न प्रकार की भूमि में की जाती है, लेकिन बलुई मिट्टी इसकी खेती के लिए उपयुक्त होती है। इसकी खेती के लिए 65 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 56 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 40 कि.ग्रा.पोटाश /हैक्टर की दर से अवश्य देनी चाहिए।
- खीरे की खेती के लिए बलुई दोमट या दोमट मृदा जिसमें जल निकास का उचित प्रबंध हो सर्वोत्तम पायी गयी है। भूमि में कार्बन की मात्रा अधिक हो तथा पी-एच मान 6.5-7.0 होना चाहिए। खीरे की खेती के लिए 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 60 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर की दर से देनी चाहिए।
- फसल में निराई-गुड़ाई करके खेत को साफ रखना चाहिए। यदि फिर भी खरपतवार नियंत्रण न हो तो स्टॉम्प 3.5 लीटर प्रति हैक्टर की दर से 1000 लीटर पानी में घोलकर मृदा के ऊपर बुआई के 48 घंटे के भीतर छिड़काव करें।
- मृदा में नमी की कमी हो तो सिंचाई करनी चाहिए। सामान्यत: कद्दूवर्गीय सब्जियों में 5-7 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिये। सिचांई व निराई-गुडाई नालियों में ही करें।
- सुनहरी हल्दी और खुशबूदार अदरक की बुआई के लिए मार्च का महीना अच्छा होता है। बुआई के लिए हल्दी व अदरक की स्वस्थ गांठों का इस्तेमाल करें। इन गांठों की बुआई 50×25 सें.मी. की दूरी पर करें। खेत की तैयारी करते समय 10 टन कम्पोस्ट, 1 बोरा यूरिया, 1 बोरा डीएपी तथा 1 बोरा पोटेशियम सल्फेट का प्रयोग करें। 2 महीने बाद 1 बोरा यूरिया, गुड़ाई के समय दें।

बागवानी फसलों का उत्पादन एवं प्रबंधन

- पपीता, आम और अमरूद आदि के बगीचों की ठीक से सफाई करें। उनमें जरूरत के मुताबिक सिंचाई करें व खाद डालें। अमरूद में उकठा रोग नियंत्रण हेतु 30 ग्राम बाविस्टीन को 15 लीटर पानी में मिलाकर प्रति पौधा जड़ों में

पपीता

प्रयोग करें।

- गर्मियों में पपीते की नर्सरी के लिए रोग तथा कीटमुक्त स्वस्थ भूमि का चुनाव करें। क्यारी की अच्छी तरह से जुताई करके मिट्टी को भुरभुरा करें। 5 कि.ग्रा. बालू, 20 कि.ग्रा. गोबर की खाद एवं 1 कि.ग्रा. नीम की खली को मिट्टी में अच्छी तरह से मिलाकर क्यारियां बनायें तथा क्यारी को समतल कर लें। नर्सरी के लिए केवल स्वस्थ व परिपक्व बीज ही उपयोग करें। बीजों को आधा सें.मी. गहरा, एक इंच बीज से बीज की दूरी पर तथा तीन इंच कतार से कतार की दूरी पर बोयें। क्यारी के चारों ओर मेड़ बनायें तथा फव्वारे से क्यारी की सिंचाई करें। पौधों को तेज धूप से बचाने के लिए क्यारी के ऊपर एक 3-4 फीट ऊंचा छप्पर बनायें। प्रत्येक 2-3 दिनों के अंतराल पर फव्वारे द्वारा क्यारी की सिंचाई करते रहें। इस प्रकार बोये गए बीज 15-20 दिनों में उग आते हैं।
- केले में 25 ग्राम नाइट्रोजन की मात्रा को पौधे से 40-50 सें.मी. दूर गोलाई में डालकर चारों तरफ निराई-गुड़ाई करके मिट्टी में मिला दें तथा सिंचाई करें।
- अंगूर की मुख्य शाखा से अनावश्यक पत्तियों को तोड़ दें तथा लता को जाल पर व्यवस्थित कर दें। अंगूर के

अंगूर

आम की खास देखभाल

- आम में भुनगा कीट से बचाव हेतु मोनोक्रोटोफॉस 1 मि.ली. अथवा डाईमेथोएड 1.6 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। आम में चूर्णिल आसिता रोग (पाउडरी मिल्ड्यू) सामान्यत: नई मंजरियों, पत्तियों एवं नये फलों पर आता है। इसकी रोकथाम के लिए 500 ग्राम/पौधा गंधक चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए। दायानोकेप 1 मि.ली./लीटर पानी का छिड़काव मार्च में 15 दिनों के अंतराल पर करना चाहिए या कैराथेन 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। आम में कला सड़न/आंतरिक सड़न के नियंत्रण के लिए बोरेक्स 6 ग्राम एक लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। उपरोक्त रोगों एवं कीट के विरुद्ध उपयुक्त रसायनों को एक साथ मिलाकर छिड़काव कर सकते हैं।

- आम के पौधों में मिलीबग या गुजिया प्रमुख कीट है। मादा कीट मार्च-अप्रैल में पौधों से नीचे उतरकर भूमि की दरारों में अंडे देती हैं। मादा कीट हजारों की संख्या में कोमल अंग जैसे बौर, पत्तियां इत्यादि को चूसकर सूखा देती हैं। इनकी रोकथाम के लिए दिसंबर में आम के मुख्य तने के चारों तरफ ग्रीस (मिट्टी की सतह से 12 इंच ऊपर) लगाकर उस पर पॉलीथीन की पट्टी (50 सें.मी. चौड़ी) लगा देनी चाहिए। तने के आसपास क्लोरोपायरीफॉस 250 ग्राम प्रतिवृक्ष की दर से मिट्टी में मिला देनी चाहिए। इस समय मृदा में मौजूद नमी को बनाए रखने के लिए पौधे के तने के चारों तरफ सूखे खरपतवार या काली पॉलीथीन की मल्चिंग बिछाना लाभदायक पाया गया है।

केला

फलों का आकार व वजन बढ़ाने के लिए 50-60 प्रतिशत फूल खिलने की अवस्था पर 30-40 मि.ग्रा. जिब्रैलिक अम्ल/लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। अगर अंगूर की फसल में रोगों व कीटों का हमला नजर आए तो कृषि वैज्ञानिक की सलाह से जरुरी उपचार करें।

- बेर में फलमक्खी की रोकथाम के लिए मैलाथियान (50 ई.सी.) 200 मि.ली. को 200 लीटर पानी में घोलकर तथा उसमें 2 कि.ग्रा. गुड़ मिलाकर एक सप्ताह के अंतराल पर छिड़काव करें।
- बरसात के मौसम में नवरोपित फलों के पौधों की निराई-गुड़ाई व सिंचाई करें।
- **लीची:** फल लगने के एक सप्ताह बाद प्लैनोफिक्स (2 मि.ली./4.8 लीटर) या एन.ए.ए. (20 मि.ग्रा./लीटर) का एक छिड़काव करके फलों को झड़ने से बचाएं। फल लगने के 15 दिनों बाद बोरिक अम्ल (2 ग्राम/लीटर) या बोरेक्स (5 ग्राम/लीटर) के घोल का 15 दिनों के अंतराल पर तीन छिड़काव करने से फलों का झड़ना कम हो जाता है और मिठास में वृद्धि होती है। फल के आकार एवं रंग में सुधार होने के साथ-साथ फल फटने की समस्या भी कम हो जाती है।

लीची

- आंवले के लिए कंचन, कृष्णा, नरेन्द्र आंवला-6, नरेन्द्र आंवला-7, नरेन्द्र आंवला-10 किस्में अनुशंसित की जाती हैं। बीज को बोने से 12 घंटे पहले पानी में भिगो देना चाहिए, जो बीज पानी में तैरने लगे उन बीजों को फेंक देना चाहिए।
- इस समय बागों में अधिकतर पेड़ लगाने, काट-छांट व खाद-पानी देने का कार्य पूरा हो चुका है, यदि नहीं तो शीघ्र कर लीजिए। मार्च में बागों में पानी जरूर दें।

पुष्प व सुगंध वाले पौधों का प्रबंधन

- बंसत ऋतु आने पर चारों तरफ फूलों की बहार छाई हुई हैं। फूलों के राजा गुलाब तो पूरी मस्ती पर हैं। गुलाब की फसल में आवश्यकतानुसार छंटाई,

फुलों की बहार

निराई-गुड़ाई व सिंचाई करना बहुत ही आवश्यक है। गुलाब के खेतों में गोबर की सड़ी हुई खाद 10 टन/हैक्टर के अलावा 100-200 ग्राम कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट प्रत्येक चार पौधों के समूह की दर से छंटाई के बाद दो बार में दी जाए।

- रजनीगंधा के बल्बों की रोपाई तैयार की गयी क्यारियों में 30 सें.मी. की दूरी पर करें। फूलों की खेती में दिलचस्पी रखने वाले किसान इस महीने रजनीगंधा व गुलदाउदी की रोपाई करें। रोपाई करने के बाद बाग की हल्की सिंचाई करना न भूलें।
- कट फ्लावर के लिए मुख्यत: जरबेरा, गलदाउदी, गुलाब, ग्लैडियोलस और रजनीगंधा प्रचलित हैं। गर्मियों में उगने वाले पुष्पीय पौधों के लिए फरवरी-मार्च में बीजरोपण करें।
- गर्मी वाले फूलों की बीजाई भी इस समय पूरी कर लें। इनमें प्रमुख हैं-बालसम, फ्रैंच गेंदा, पेटूनिया, पोरचुलाका, साल्विया, सूरजमुखी, जिनिया और वरवीना इत्यादि। बीजाई के बाद नियमित रूप से नर्सरी की सिंचाई करते रहें तथा निराई-गुड़ाई करके खरपतवार निकाल दें। फूलदार पेड़ व झाड़ियां तथा हैज लगाना भी पूरा कर लें। मई-जून में लगने वाले घास के लान की जमीन की तैयारी भी मार्च से शुरू कर दें। ■

खूबसूरत ग्लैडियोलस

ग्लैडियोलस में कंद लेने के लिए पौधे को भूमि से 15-20 सें.मी. ऊपर से काटकर छोड़ दें और सिंचाई करें। जब पत्तियां पीली पड़ने लगे तो सिंचाई बन्द कर दें। ग्लैडियोलस में काला धब्बा रोग की रोकथाम के लिए 0.2 प्रतिशत कैप्टॉन का घोल बनाकर छिड़काव करें। ग्लैडियोलस में कटुआ कीट नियंत्रण के लिए खेत की तैयारी के समय 20-25 कि.ग्रा./हैक्टर थीमेट 10जी या कार्बोफ्यूरान के ग्रैन्यूल्स मिला लें। यदि चेंपा एवं थ्रिप्स का प्रकोप है, तो उससे बचाव के लिए 0.2 प्रतिशत मेटासिड-50 दवा का घोल बना लें और छिड़काव करें।

रजनीगंधा

सुंदरबन में वानस्पतिक संपदा

ओ.एन. तिवारी[1], मधुमंती मंडल[2], गोपीनाथ हलधर और **डॉली वात्ल धर[1]**

सुंदरबन दुनिया के मेंग्रोव पारिस्थितिकी तंत्र का सबसे बड़ा हिस्सा है, जिसमें भारत और बांग्लादेश पर बने कई द्वीप और परस्पर जुड़ी नदियां शामिल हैं। यह क्षेत्र अपनी वनस्पति, पानी की गुणवत्ता और अन्य जैव-भौतिक गतिविधियों के मामले में अद्वितीय है। संक्षेप में इसके कुल वन क्षेत्र का 31.1 प्रतिशत नदी, मेंग्रोव आदि है। 1997 में सुंदरबन को यूनेस्को की विश्व विरासत स्थल के रूप में मान्यता दी गई थी।

सुंदरबन दुर्लभ वनस्पतियों, जीवों और प्रचुर मात्रा में कई माइक्रोबियल का वास स्थान है। इस जंगल में सुंदरी (हेरीटेरिया फॉमस), गीवा (एक्सकोकेरिया ऐगलोचा), गोरान (सेरीओपस दिकंदरा) और केरो (सोनेतरिया एपेटला) वनस्पतियों की प्रचुरता है। इस जंगल का विशिष्ट वृक्ष सुंदरी (हेरिटेरिया लैटोरिलिसिस) है, जिसके नाम से इस जंगल का नाम दिया गया था। ये पेड़ नमक युक्त पानी में बढ़ते हैं और उनके लिए अलवणीय जल बहुत ही अनमोल है। वे अपनी रसीली पत्तियों में अलवणीय जल को संचित करते हैं और अपने स्वयं के तंत्र के उपयोग से लवण से छुटकारा दिलाते हैं। इस प्रकार मेंग्रोव वृक्षों में रेगिस्तान के पौधों की तरह जल संरक्षण सुविधाएं होती हैं। मेंग्रोव पौधे रसायनों के अनमोल स्रोत हैं, जो कि मनुष्य के लिए कई तरह से उपयोगी हैं। मेंग्रोव पत्तियों में फिनोल और फ्लेवोनॉइड होते हैं, जो पराबैंगनी (यूवी) स्क्रीन यौगिकों के रूप में काम करते हैं। कई रोगों के इलाज के लिए मैगलॉव पेड़ों के पत्तों और जड़ों के विभिन्न अर्क का उपयोग आयुर्वेद में लंबे समय तक किया गया है। मेंग्रोव पौधों के कई हिस्सों में मानव इमुनोडेफिशयंसी वायरस सहित पशु, मानव और प्लांट वायरस की प्रतिरोधी महत्वपूर्ण गतिविधि होने के कारण वनस्पतियों का उपयोग प्रचुर मात्रा में सामान्य लोग करते हैं।

सुंदरी पेड़ और इसके फल

मेंग्रोव, समुद्र से ताजे पानी की व्यवस्था में छोटी मछलियों, केकड़ों, चिंपांग और अन्य क्रस्टेशियन्स की प्रजातियों के लिए महत्वपूर्ण निवास स्थान प्रदान करते हैं। ये भोजन और आश्रय के अनुकूल होते हैं और पुनरुत्पादित करते रहते हैं, जिन्हें न्यूमेटोफोर्स कहा जाता है। ये ऑक्सीजन की आपूर्ति पाने के लिए एनारोबिक कीचड़ से ऊपर की ओर बढ़ते हैं। सुंदरबन में लुप्तप्राय बंगाल टाइगर (पेथेरा टाइगिरस टाइगिरस), मकाक, जंगली सूअर, आम भूरे रंग के मोनोजूस, लोमिड़यां, जंगली बिल्लियां, उड़ने वाली लोमड़ियां, पैंगोलिन और चित्तीदार हिरण भी पाए जाते हैं। सुंदरबन एक अद्वितीय पारिस्थितिकी तंत्र और एक प्रचुर वन्यजीव आवास प्रदान करता है। नए सूक्ष्मजीवों की खोज के लिए वर्षों से गहरे समुद्र और महासागरों, तालाबों, झीलों, जंगलों और घास के मैदानों का पता लगाया गया है, लेकिन मेंग्रोव पारिस्थितिकी तंत्र और इसके परिवेश का एक दुर्लभ आवास है। यह अब वैज्ञानिक शोध का केंद्र बिंदु बन गया है। इस संसाधन संबंधी पारिस्थितिकी तंत्र में विशाल संख्या में विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीव और नील हरित शैवाल की प्रजातियां हैं। ऐसे नील हरित शैवाल और सूक्ष्म शैवाल की प्रजातियों की नई और दुर्लभ प्रजातियां तलाशना जरूरी है, जो उच्च लवणयुक्त निवास में रह सकें। बड़े ग्रीन शैवाल भारतीय सुंदरबन के अलग-अलग ताजा और खारे पानी के आवास में बड़े पैमाने पर पाए जाते हैं, जिनकी भोजन, खाद, दवा और जैव ऊर्जा जैसे जैव-प्रौद्योगिकीय महत्व के लिए विस्तृत रूप से सर्वेक्षण और पहचान की आवश्यकता होती है। अब तक केवल 35 बेन्थिक शैवाल दर्ज किये गए हैं, जो न्यूमेटोफोरस पर रहते हैं और जल लहर के दौरान जलमग्न हो जाते हैं। इन प्रजातियों में से कुछ कैटेनेला, कालोग्लोसा, बोसिट्रिशिय और कडाडोफोरला हैं। बंगलादेश के सुंदरबन क्षेत्र से शैवाल प्रजातियां, ओडोगोनियम, मौजेओतिया, जिग्नेमा, सिरोगयानियम और कोरोकोनियम प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं। इनमें उच्च मात्रा में बायोएक्टिव यौगिक जैसे प्रोटीन, लिपिड, रंजक, एंटीऑक्सीडेंट, आवश्यक अमीनो एसिड और खनिज होते हैं।

नील हरित शैवाल जैसे कुछ मायकोअलगाई, लिंगबया मजूस्कूला, फोरेमिडियम वेलडेरियनम, सिनेकोसिसिस्टस पेवलेकी और कोरोफीसीन जेरा बहुतायत में यहां पाए जाते हैं। रहिजॉलोनियम रिपरियम, रहिजॉलोनियम अफ्रिकनुम, पिथोफोरा क्लेवना, सिरोगरा ओरिएंटल और क्लेंडरोफोरा क्रिस्टलीना में उपयुक्त फैटी एसिड संरचना होने के कारण बायोडीजल उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण वनस्पतियां हैं। लिंगबया-फोरेमिडियम-फ्लेक्टोनेमा जाति के मेथोनोलिक अर्क आसिलोटेरिया जाति लेपटोलिजिविया सेप्रेम फोरेमिडियम जाति की प्रजाति कृषि क्षेत्र में बहुत उपयोगी होती है। ग्राम-पॉजिटिव बैक्टीरिया बेसिलस सबिटिलस, स्टेफलोकोकस आरयस का बैक्टीरिया, एसचेरिचिया कोलाई, सूडोमोनस एरिगनोसा के खिलाफ रोगाणुरोधी गतिविधि होने के कारण इनका उपयोग अत्यधिक बढ़ जाता है। विशाल जैव विविधता वाले सुंदरबन में विस्तृत अध्ययन और अनुसंधान की आवश्यकता है। जीव विज्ञानियों, सूक्ष्म जीव विज्ञानी और वनस्पति विज्ञानियों के साथ आने और संभावित महत्वपूर्ण पौधों, पेड़ों आदि के कई अज्ञात समूहों की खोज की आवश्यकता है।

[1]नील हरित शैवाल का संरक्षण और उपयोग केंद्र, सूक्ष्म जीव विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012; [2]केमिकल इंजीनियरिंग विभाग, नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, दुर्गापुर (पश्चिम बंगाल)

पंजीकरण संख्या 14252/57 पंजीयक, समाचार पत्र, भारत सरकार
दिल्ली पोस्टल पंजीकृत संख्या DL(C)-12/1145/10-12
ISSN 0023-1088
मूल्य: ₹30

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के प्रकाशन

JOURNALS

HANDBOOKS

भाकृअनुप
ICAR

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें:
व्यवसाय प्रबंधक
कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-I, पूसा, नई दिल्ली 110 012
टेलिफैक्स: 91-11-25843657; ई-मेल: bmicar@icar.org.in
वेबसाइट: www.icar.org.in

डा. सतेन्द्र कुमार सिंह, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली 110 092 से मुद्रित। सम्पादक: अशोक सिंह